वर्ष 1 अंक 1 मार्च 2026

वैदिक धर्म, संस्कृति और संस्कारों की संवाहक

वेद प्रवाह

अर्ध वार्षिक पत्रिका

प्रकाशक:

JITNA DEVI SEVA SANSTHAN

जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट

JITNA DEVI SEVA SANSTHAN TRUST

पंजीकृत कार्यालय : ए-16, द्वितीय मंजिल, यूनिट-4, राजू पार्क, देवली रोड, खानपुर, नई दिल्ली-110080

Regd. Office : A-16, Second Floor, Unit-4, Raju Park, Devli Road, Khanpur, New Delhi-110080

+91-9953782813 jitnadevisevasansthan@gmail.com www.jitnadevisevasansthan.org

बच्चों के मानसिक एवं बौद्धिक विकास हेतु

अमृत पॉल आर्य शिशु शाला

मान्यता प्राप्त कक्षा 1 से 5वीं तक

आर्य समाज कैलाश–ग्रेटर कैलाश–1

नई दिल्ली–110048 फोन : 011–46593498

प्रवेश 2026-2027

प्ले ग्रुप से पांचवीं तक

एम.सी.डी. से मान्यता प्राप्त

संसार को श्रेष्ठ बनाने के उद्देश्य ''कृण्वन्तो विश्वमार्यम'' के साथ मजबूत शैक्षणिक बुनियाद।

- योग्य, समर्पित और प्रेरक शिक्षक।
- बहुत कम फीस
- शिक्षक और छात्रों का अच्छा अनुपात।
- खुली हवादार कक्षाएँ।
- कंप्यूटर एवं स्मार्ट बोर्ड आधारित शिक्षा।
- सीसीटीवी कैमरे
- मेधावी छात्रों के लिए छात्रवृत्ति उपलब्ध।
- शीघ्र प्रवेश और शुल्क में सिबलिंग रियायत।

3½ वर्ष की आयु से

कक्षा 6 के लिए अमृत पॉल आर्य शिशु शाला निम्न स्कूलों की फीडर स्कूल है:-

1. कौटिल्या राजकीय सर्वोदय बाल विद्यालय, चिराग एन्क्लेव, नई दिल्ली–110048
2. सर्वोदय कन्या विद्यालय नं. 2, ईस्ट ऑफ़ कैलाश, नई दिल्ली–110065

Website: www.samajaryagk1.org | E-mail: aparyashishushala10@yahoo.com

Shikha Roy
Member Legislative Assembly (MLA)
Greater Kailash, NCT Of Delhi

सत्यमेव जयते

शुभकामना सन्देश

यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट, नई दिल्ली द्वारा "वेद प्रवाह" नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया जा रहा है। पत्रिका के माध्यम से महर्षि दयानन्द, वेद और आर्य समाज का सर्वहितकारी सन्देश जन-जन तक पहुँचाने के दुर्लभ अवसर का सदुपयोग हो-यही सदभिलाषा है।

"वेद प्रवाह" के माध्यम से वैदिक संस्कृति, भारतीय जीवनमूल्यों और राष्ट्रनिर्माण की भावना को जन-जन तक पहुँचाने का जो प्रयास किया जा रहा है, वह वास्तव में सराहनीय है। वेदों में निहित ज्ञान केवल धार्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक, वैज्ञानिक और मानवीय दृष्टि से भी मार्गदर्शक है।

मुझे विश्वास है कि यह पत्रिका समाज में सत्य, ज्ञान और सदाचार के प्रसार का माध्यम बनकर नई पीढ़ी को प्रेरणा प्रदान करेगी।

"वेद प्रवाह" के सम्पादक मंडल एवं सहयोगियों को मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ कि वे इस यज्ञीय कार्य को निरंतर प्रगति की ओर अग्रसर रखें।

शिखा राय

शिखा राय
विधायक,
ग्रेटर कैलाश, नई दिल्ली

Resi/Off: B-13 Greater Kailash Enclave-II, G.K.-II, New Delhi-48
Mob: 9868542101 | E-mail : shikharai.bjp@gmail.com

MUNJAL SHOWA LIMITED

Registered Office & Works : 9-11, Maruti Industrial Area, Sector - 18, Gurugram - 122 015 (Haryana) INDIA
E-mail : msladmin@munjalshowa.net Website : www.munjalshowa.net
Corporate Identity Number : L34101HR1985PLC020934, PAN : AAACM0070D
Phone : 0124-4783000

शुभकामना

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि **'जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट'** की ओर से **'वेद प्रवाह'** नामक पत्रिका प्रकाशित हो रही है।

युवा पीढ़ी का कार्य विशेषकर सराहनीय है। पत्रिका में प्रतिष्ठित विद्वानों द्वारा विचारात्मक लेख लिखे गए हैं। यह प्रयत्न प्रशंसा के योग्य है।

हमें गर्व है कि 'जीतना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट' द्वारा अनेक लोकोपकारी गतिविधियाँ भी चलाई जा रही हैं।

पत्रिका के सफल प्रकाशन हेतु अपनी शुभकामनायें प्रेषित कर रहा हूँ।

शुभकामनाओं सहित।

योगेश

(योगेश मुंजाल)
अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक
M/s मुंजाल शोवा लिमिटेड

॥ ओ३म् ॥

आर्य समाज कैलाश-ग्रेटर कैलाश -1 (पंजी.)

ARYA SAMAJ KAILASH-GREATER KAILASH-I (Regd.)

Maharishi Dayanand Saraswati Marg, B-31/C, Kailash Colony, New Delhi-110048

Tel.: 011-35823673 • E-mail: samajarya@yahoo.in • Web.: www.aryasamajgk1.in

An ISO 9001:2015 Certified Institution

शुभकामना संदेश

जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट के द्वारा **'वेद प्रवाह'** पत्रिका के नवीन अंक के प्रकाशन पर मैं हार्दिक शुभकामनाएँ व्यक्त करता हूँ। वैदिक संस्कृति, सत्य, धर्म और नैतिक जीवन मूल्यों पर आधारित श्रेष्ठ विचारों के प्रसार हेतु यह पत्रिका एक महत्वपूर्ण माध्यम बन गई है।

मुझे प्रसन्नता है कि वेद प्रवाह पाठकों को वैदिक ज्ञान, समाजोपयोगी लेखों तथा प्रेरणादायक विषय-वस्तु से निरंतर लाभान्वित कर रही है। आशा है कि पत्रिका आगामी समय में भी इसी उत्साह और निष्ठा के साथ आर्य समाज के आदर्शों तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के विचारों को समाज तक पहुँचाने में अग्रसर रहेगी।

ईश्वर से प्रार्थना है कि यह पत्रिका उत्तरोत्तर उन्नति करती रहे और जन-जन में सत्य एवं धर्म के पथ पर चलने की प्रेरणा देती रहे।

राजेन्द्र कुमार

राजेन्द्र कुमार वर्मा
(प्रधान)

शुभकामना संदेश

वेद प्रवाह पत्रिका के प्रकाशन पर हार्दिक बधाई और शुभकामनाएँ।

यह पत्रिका वैदिक विचारधारा, सत्य, और संस्कृति के प्रचार-प्रसार का एक सशक्त माध्यम बने-यही मेरी मंगलकामना है।

वेदों में निहित ज्ञान के आलोक से समाज में सत्य, सदाचार और नैतिकता की ज्योति प्रज्वलित हो, और "वेद प्रवाह" वैदिक मूल्यों के पुनर्जागरण में अपनी विशिष्ट भूमिका निभाए।

मैं पत्रिका की सम्पादकीय टीम तथा सभी सहयोगियों को हार्दिक शुभकामनाएँ देता हूँ कि वे इस वैचारिक प्रवाह को निरन्तर गतिशील और जनकल्याणकारी बनाए रखें।

अरुण बहल

अरुण बहल
(मंत्री)

Regn. No. S - 8149/1976
Email : aryasabha@yahoo.com
Web : www.thearyasamaj.org

✡ ओ३म् ✡

२३३६०१५०
२३३६५६५६

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा (पं०)

The Delhi Arya Pratinidhi Sabha

१५—हनुमान् रोड, नई दिल्ली — ११०००१

200 वीं महर्षि दयानन्द सरस्वती जयन्ती 1824-2024

27-11-2025

शुभकामना संदेश

वेद ज्ञान की अमृतधारा उतनी ही प्राचीन है जितना कि मानव जीवन। जब तक मनुष्य वेद को आधार मानकर अपने जीवन को गरिमा प्रदान करता रहा तब तक धरती पर सुख, शांति और आनंद की व्यापकता बनी रही। कालांतर में जब समाज वैदिक ज्ञान से विमुख हुआ तब नियम, सिद्धांत, मान्यताओं, परंपराओं में गिरावट आने लगी और देखते ही देखते अज्ञान, अविद्या, अंधकार, ढोंग, पाखंड और अंधविश्वास लगातार बढ़ने लगा। चार वर्ण और चार आश्रम की व्यवस्था चरमराने लगी, परिणाम स्वरूप मानवता के पतन का रास्ता खुल गया, अनेक मत, पंथ,संप्रदाय पनपने लगे। ऐसे विपरीत समय में महर्षि दयानंद सरस्वती जी का जन्म 12 फरवरी 1824 को गुजरात के टंकारा ग्राम में हुआ, उन्होंने कठिन तप, त्याग स्वाध्याय और संयम से मानव मात्र को वेद मार्ग पर चलने के लिए संदेश देते हुए उदघोष किया **"आओ, लोट चलें वेदों की ओर"** उनकी प्रेरणा से आर्य समाज निरंतर वेद धर्म के प्रचार-प्रसार में संलग्न है। आज संपूर्ण विश्व में हजारों संस्थाएं और करोड़ों आर्य वैदिक मार्ग पर आगे बढ़ रहे हैं।

महर्षि दयानंद सरस्वती जी की शिक्षाओं और आर्य समाज की वैदिक विचार धारा से प्रेरित जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट द्वारा (वेद प्रवाह) पत्रिका का प्रकाशन प्रशंसनीय है। प्रस्तुत पत्रिका वैदिक धर्म, संस्कृति और संस्कारों के प्रचार, प्रसार और विस्तार का अनुपम माध्यम बने, अज्ञान, अविद्या, ढोंग, पाखण्ड और अंधविश्वास का तिरस्कार करे, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा एवं समस्त शिक्षण संस्थानों की ओर से शुभकामनाओं सहित पूरे सम्पादक मंडल को हार्दिक बधाई।

धर्मपाल आर्य
प्रधान
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

Regn. No. S - 8149/1976
Email : aryasabha@yahoo.com
Web : www.thearyasamaj.org

✡ ओ३म् ✡

२३३६०१५०
२३३६५६५६

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा (पं०)

The Delhi Arya Pratinidhi Sabha

१५—हनुमान् रोड, नई दिल्ली — ११०००१

200 वीं महर्षि दयानन्द सरस्वती जयन्ती 1824-2024

27-11-2025

शुभकामना संदेश

वेद ईश्वर की अमृतवाणी है। वेदज्ञान की अजस्र धारा शाश्वत और सनातन है। मानव जीवन में वेद विद्या उतनी ही महत्वपूर्ण है जितने कि प्राण। वेद मंत्रों को पढ़ना, पढ़ाना, सुनना, सुनाना, उनके भाव एवं अर्थों को जानना, समझना तदनुसार आचरण और व्यवहार करना प्रत्येक मनुष्य का परम कर्तव्य है। जब तक मानव समाज वेद के अनुसार जीवन यापन करता रहा तब तक धरती पर स्वर्गमय वातावरण बना रहा, किन्तु वेद से विमुख होने के कारण व्यक्ति, परिवार, समाज, देश और दुनिया में विकृति आती गई, परिणाम स्वरूप विभिन्न मत, पंथ, संप्रदाय बनते गए और मानव जीवन दु:ख,पीड़ा और संतापों से ग्रस्त होता गया।

19 वीं सदी के महानमानव महर्षि दयानंद सरस्वती जी ने पुन: वेदों की पुनर्स्थापना करके संपूर्ण मानवजाति को उपकृत किया और मानव मात्र को वेद के मार्ग पर चलने का आह्वान किया। महर्षि की शिक्षाओं और वैदिक सिद्धांतों, मान्यताओं और परंपराओं को जन-जन तक पहुंचाने का कार्य आर्य समाज पिछले 150 वर्षों से लगातार करता आ रहा है, इस क्रम अनेक पत्र पत्रिकाएं भी निरन्तर प्रकाशित हो रही हैं। इसी श्रृंखला में **"वेद प्रवाह"** पत्रिका का प्रकाशन शुभ एवं कल्याणकारी हो, इसके लिए जितना देवी सेवा संस्थान एवं संपादक मंडल को हार्दिक बधाई एवं बहुत बहुत शुभकामनाएं।

विनय आर्य
महामंत्री
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा एवं
सदस्य- कोर कमिटी
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

श्याम जाजू
निर्वतमान राष्ट्रीय उपाध्यक्ष
भारतीय जनता पार्टी

निवास -
A-47 कैलाश कॉलोनी
नई दिल्ली - 110048
Mob. :98116 99789

Sr. No. ..... Date : .....

शुभकामना संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत हर्ष हुआ कि **"वेद प्रवाह"** नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया जा रहा है।

इस *पत्रिका* के माध्यम से वैदिक संस्कृति, भारतीय जीवन-मूल्यों तथा राष्ट्र-निर्माण की भावना को जन-जन तक पहुँचाने का जो पुनीत प्रयास किया जा रहा है, वह निश्चय ही अत्यंत सराहनीय है।

वेदों में निहित ज्ञान केवल धार्मिक ही नहीं, अपितु सामाजिक, वैज्ञानिक एवं मानवीय दृष्टि से भी सदैव मानवता का मार्गदर्शन करता रहा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पत्रिका समाज में सत्य, ज्ञान एवं सदाचार के प्रसार का एक सशक्त माध्यम बनेगी तथा नई पीढ़ी को सकारात्मक दिशा एवं प्रेरणा प्रदान करेगी।

इस *पत्रिका* के सम्पादक मंडल एवं समस्त सहयोगियों को इस यज्ञीय कार्य हेतु मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ। ईश्वर से प्रार्थना है कि यह पत्रिका निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर रहे।

— **श्याम सुंदर जाजू**

ओ३म्

मनु संस्कृति संस्थान (रजि.)

D-33, डिफेन्स कालोनी, नई दिल्ली–110024

संपर्क : 011-41551277, 24652418, 41550709

दिनांक : 18-11-2025

श्रीमान सुरेंद्र प्रताप जी,
संपादक, प्रकाशक
वेद प्रवाह (पत्रिका)

सादर सप्रेम नमस्ते

राजर्षि ठाकुर विक्रम सिंह, सोमार्य
संस्थापक, राष्ट्र निर्माण पार्टी

आपका पत्र मिला। **जितना देवी संस्थान ट्रस्ट** द्वारा **वेद प्रवाह** पत्रिका का प्रकाशन शीघ्र किया जा रहा है। पत्रिका का उद्देश्य अतिउत्तम एवं सराहनीय है। आप सभी का पुरूषार्थ और पत्रिका के विचार पत्रिका को नित नई ऊंचाइयों पर ले जाने में सक्षम होंगे। हमारी ओर से आपको और सभी पाठकों को धन्यवाद एवं मेरी शुभकामना। सुयोग्य सेवा हेतु सूचित करें। सभी का धन्यवाद।

आपका

विक्रम सिंह

ठाकुर विक्रम सिंह
संस्थापक, राष्ट्र निर्माण पार्टी

Phone No.: 011-23503500

Web: www.davcmc.net.in
E-mail: info@davcmc.net.in

DAV COLLEGE MANAGING COMMITTEE

CHITRA GUPTA ROAD, NEW DELHI-110055

*Ref. No.:*_____

Dated: _____

दिनांक 09–12–2025

आदरणीय श्री सुरेन्द्र प्रताप जी
सादर नमस्ते ।

आशा है कि आप स्वस्थ एवं कुशल होंगे ।

आपका पत्र दिनांक 14–11–2025 का मिला । यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट के तत्वावधान में "वेद प्रवाह" प्रत्रिका प्रकाशित की जा रही हैं । मैं इसके सफल प्रकाशन के लिए अपनी ओर से एवं डी ए वी कालेज प्रबन्धकर्त्री समिति की ओर से हार्दिक शुभकामनायें प्रेषित करता हूं।

मुझे पूरी आशा है कि यह पत्रिका समाज में शिक्षा, संस्कृति तथा नैतिक मूल्यों का प्रसारण करने में मील का पत्थर साबित होगी और समाज के लिये प्रेरणादायक एवं लाभदायक सिद्ध होगी ।

मेरी शुभकामनायें सर्वदा आपके साथ है ।

शुभकामनाओं सहित––

भवदीय

(अजय सहगल)
सचिव

सेवा में,
श्री सुरेन्द्र प्रताप जी,
सम्पादक / प्रकाशक
वेद प्रवाह
जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट
ए–16, सेकेण्ड फ्लोर, यूनिट'4,
राजू पार्क, देवली रोड, खानपुर
नई दिल्ली–110080

शहीद खेमचन्द्र डौर्बी राजकीय महाविद्यालय (नैनीताल) उत्तराखण्ड
S.K.C.D GOVERNMENT COLLEGE, BETALGHAT (NAINITAL) U.K.

पत्रांक ..... दिनांक 15.12.2025

शुभकामना संदेश

संसार के सर्व प्राचीन ज्ञान का मूल स्रोत चार वेदों को माना जाता है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद, में मानव कल्याण की समस्त विद्याएं एवं ज्ञान-विज्ञान समाहित है जिसकी आभा या प्रभा ही मानव मात्र को आलोक प्रदान करती है।

मुझे यह जानकर अत्यन्त हर्षानुभूति हो रही है कि श्री सुरेन्द्र प्रताप जी एक षाड्मासिक पत्रिका **"वेद प्रवाह"** का प्रकाशन अपने संपादकत्व में प्रारंभ करने जा रहे हैं जिसे भारत सरकार के प्रेस पंजीयन विभाग द्वारा भी अनुमति प्रदान की गई है।

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि यह "वेद प्रवाह" पत्रिका वेदों में वर्णित ज्ञान-विज्ञान को सरल व सहज माध्यम से आम पाठकों तक प्रचारित व प्रसारित करने में अवश्य सफल होगी।

मैं **"वेद प्रवाह"** पत्रिका के सुचारु सफल व सार्थक प्रकाशन हेतु अपनी ओर से हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

प्रो० (डा०) विनय कुमार विद्यालंकार
प्राचार्य
राजकीय महाविद्यालय
बेतालघाट (नैनीताल)

सेवा में,
श्री सुरेन्द्र प्रताप जी
ए-16, द्वितीय तल, यूनिट-4,
राजू पार्क, देवली रोड, खानपुर,
नई दिल्ली-110080

परोपकारिणी सभा

केसरगंज, अजमेर-305001 (राज.) • फोन: 0145-2460164, 8890316961

दिनांक : 16.12.2025

शुभकामना संदेश

श्री सुरेन्द्र प्रताप
सम्पादक, वेद प्रवाह

महोदय,

आपकी संस्था जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट द्वारा **'वेद प्रवाह'** का अंक प्रकाशित कर रही है, यह शुभ समाचार है। वर्तमान में अनेक पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं, किन्तु वेद प्रतिपादित सिद्धान्तों का प्रसार करने वाले पत्र-पत्रिका अत्यल्प ही हैं ।

आशा है वेद प्रवाह का समाज में वैदिक मूल्यों के प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान रहेगा।

सफल प्रकाशन की शुभ कामनाएं ।

डॉ. वेदपाल
सम्पादक, परोपकारी

शुभकामना संदेश

जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट द्वारा 'वेद प्रवाह' पत्रिका के प्रथम अंक के प्रकाशन हेतु हार्दिक बधाई। वेदों के इस प्राचीन एवं सनातन ज्ञान को जन-जन तक पहुँचाने का आपका संकल्प प्रत्येक पृष्ठ पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

आशा है कि 'वेद प्रवाह' अपनी भावी यात्रा में ज्ञान, संस्कार और प्रेरणा का सतत स्रोत बनेगा तथा समाज को वैदिक मूल्यों से अनुप्राणित करेगा।

इस उत्कृष्ट एवं प्रशंसनीय पहल हेतु संस्थान के समस्त पदाधिकारियों एवं संपादक मंडल को हार्दिक शुभकामनाएँ।

सादर,

J. Prakash

(जय प्रकाश)
असिस्टेंट कमिश्नर
एमसीडी, नरेला जोन

ARYA RAVI DEV GUPT
M.Com., LL.B., F.C.M.A.

Ekal Vidyalaya Foundation of India
Chairman

Hind Punarutthan Sangh Trust
Chairman

Rajarya Sabha Samiti, New Delhi
President

Dakshin Delhi Ved Prachar Mandal
President

Ved Sansthan, New Delhi
Secretary

Trikon Machine Pvt Ltd
Chairman

Vipul Sameer Agencies LLP
Partner

Date

शुभाशंसा

प्रिय सुरेंद्र प्रताप

मुझे यह जानकर हर्ष हुआ की तुम व तुम्हारे सहयोगियों ने वेद प्रवाह नामक पत्रिका निकालने का शुभसंकल्प लिया है।

वैदिक विद्वानो के मुखारविंद से निसृत अक्षरों को क्षरण से बचाने हेतु उन्हें लिपिबद्ध करने का सुविचार केवल तुम्हे अपने परिवार से प्राप्त संस्कारों के कारण ही आया है। तुम्हारी पूज्या दादीजी स्मृतिशेष जितनादेवी जी की स्मृति भी इस निमित्त अक्षुण्ण हो जाएगी।

" स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ताम पावमानी द्विजानां .... " . वरदात्री वेदमाता के अमृत प्रवाह को निरंतर गतिमान रखने का यह तुम्हारा शिवसंकल्प वस्तुतः उसकी स्तुति के तुल्य ही है।

मै इस पत्रिका के समस्त संपादक मंडल को इस पुण्य प्रयास के हेतु शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ तथा परमपिता परमेश्वर से इस उद्यम को यशस्वी बनाने की कामना करता हूँ।

आर्य रविदेव गुप्त

18.11.2025

B-5/108, Safdarjung Enclave, New Delhi-110029 +91 11 49869230, 9818006185 gupta.ravidev3@gmail.com

Dr Vinod K Malik *M.S.*
Former Chair, Department of Lap & Gen Surgery
Dean
Sir Ganga Ram Hospital
Rajinder Nagar New Delhi 110060
DMC #27748 **vinod.k.malik@gmail.com**

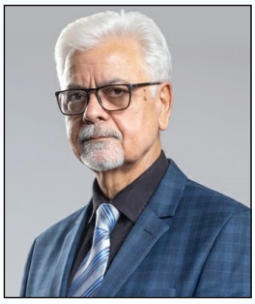

Nov. 10, 2025

प्रताप जी,

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि आप **वेद प्रवाह** नाम की एक पत्रिका निकाल रहे हैं। आशा है की यह पत्रिका सरल और व्यवहारिक तरीके से हमें हमारे वैदिक विचारों को परिपक्व करने की दिशा में एक मील का पत्थर साबित होगी। ऐसा हमारा विश्वास भी है और अपेक्षा भी। आप मानवता के लिए एक धरोहर गढ़ने का कार्य करने जा रहे हैं जो अपने आप में एक बहुत ही सराहनीय काम है। आपको अपने इस उपक्रम में सफलता मिले ऐसी हमारी मंगल कामना है। इस पत्रिका में जो दर्शन हमें पढ़ने के लिए मिलेगा वह हमारे जीवन के लिए एक मार्गदर्शक का काम करेगा। आपके और आपके साथियों को हमारी ओर से बहुत-बहुत शुभकामनाएं और बधाई।

Dr Vinod Kumar Malik
Senior consultant Department of Surgery
Clinic B 231/B Basement Greater Kailash Part-1,
New Delhi 110048

अनुक्रमणिका

क्र.सं	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय		16
3.	वेद सब सत्य-विद्यायों की पुस्तक है, कैसे?-देखिये, ऐसे!	डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	17
4.	जीवन का महत्त्व	डॉ महेश विद्यालंकार	20
5.	ईश्वर का अस्तित्व! दर्शन और विज्ञान की दृष्टि में	डॉ. वागीश आचार्य	23
6.	हमारे दैनिक जीवन में आर्यसमाज के दस सिद्धान्त	डॉ. विनय विद्यालंकार	28
7.	जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट द्वारा आयोजित कुछ शिविरों की झलकियां		31-34
8.	शंका समाधान	स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक	37
9.	वैदिक परंपरा और उसकी वैज्ञानिकता	डॉ. देवकृष्ण दाश	39
10.	'पापों में वृद्धि का कारण ईश्वर द्वारा जीवों को प्राप्त स्वतन्त्रता का दुरुपयोग	मनमोहन कुमार आर्य	41
11.	Echoes of Sustainable Developmen: Parallels Between Sustainable Development Goals (SDGS) and Principles of Vedic Society	डॉ. दिव्या राणा	44
12.	"अथर्ववेद का भूमिसूक्त" एक विवेचनात्मक अध्ययन	डॉ. धर्मेन्द्र शास्त्री	47
13.	महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा विदेशों में परिवर्तन क्रांति	किरण वर्मा	49
14.	पर्यावरण और प्राचीन भारतीय संकल्पना	अमला ठुकराल	51
15.	धर्मो रक्षति रक्षितः	रचना आहूजा	53

मूल्य : एक प्रति :₹ 55/- वार्षिक : ₹100/-

इस पत्रिका में प्रकाशित समस्त लेखों, विचारों एवं मतों की जिम्मेदारी संबंधित लेखक/लेखिका की है। पत्रिका का उद्देश्य वैचारिक एवं सांस्कृतिक जागरूकता है। सम्पादक या प्रकाशक आवश्यक नहीं कि सभी विचारों से सहमत हों।

संस्थापक एवं प्रधान सम्पादक :
सुरेन्द्र प्रताप

परामर्शदाता सम्पादक मण्डल :
श्री विजय कृष्ण लखनपाल
श्री राजेन्द्र कुमार वर्मा
श्री अमर सिंह पहल
श्री सतीश चन्द्र सक्सेना
आचार्य अनिल शास्त्री
श्रीमती रेनू चौधरी
डॉ. दिव्या राना

सह-सम्पादिका :
श्रीमती अमला ठुकराल

विशिष्ठ सहयोगी :
श्रीमती आदर्श आहूजा

विज्ञापन प्रतिनिधि :
श्रीमती रेखा - 9315628113

आवरण सज्जा :
अरुण कुमार

शब्द संयोजन :
प्रताप कम्प्यूटर्ज़, ए-16, राजू पार्क, देवली रोड, नई दिल्ली-80

मुद्रक और प्रकाशक
सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक
श्री सुरेन्द्र प्रताप द्वारा 'विबा प्रेस प्राइवेट लिमिटेड' C-66/3, ओखला इण्डस्ट्रियल स्टेट, फेज़-2, नई दिल्ली-110020 से मुद्रित करवाकर ए-16, दूसरी मंजिल, यूनिट-4, राजू पार्क, देवली रोड, खानपुर, नई दिल्ली से प्रकाशित।
सम्पादक : सुरेन्द्र प्रताप

पत्रिका पंजीयन संख्या :
DLHIN/25/A3558

सम्पादकीय कार्यालय
जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट
ए-16, दूसरी मंजिल, यूनिट-4, राजू पार्क, देवली रोड, खानपुर, नई दिल्ली-110080
Mob.: 9953782813 • Email : jitnadevisevasansthan@gmail.com
Website : www.jitnadevisevasansthan.org

सम्पादकीय.....

आर्य समाज के प्रांगण में वैदिक विद्वानों का सान्निध्य प्राप्त कर तथा प्रवचन सुनते हुए मन में ये विचार आया कि क्यों न उनके अमूल्य वचनों को लिपिबद्ध किया जाए। वास्तव में बचपन में पूज्या दादी जी स्व. श्रीमती जितना देवी द्वारा जो संस्कार दिए गए उनका प्रस्फुटन इस पत्रिका के रूप में हुआ। '**जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट**' द्वारा '**वेद प्रवाह**' नामक इस पत्रिका में आर्य जगत् के लब्धप्रतिष्ठ वैदिक विद्वानों के विचार तथा लेख सम्मिलित किए गए हैं जिससे पाठकों को वेदों को समझने व वैदिक मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्राप्त हो सके। सत्य ही कहा गया है "**महाजनाः येन गताः सः पन्थाः**"।

हम आभारी हैं इन वैदिक विद्वानों के जिन्होंने सहर्ष इस कार्य के लिए अपनी स्वीकृति दी तथा अपना अमूल्य समय निकालकर बहुमूल्य लेख इस पत्रिका में छपने हेतु प्रदान किए। मैं उन लोगों का भी आभार व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य मानता हूँ जिन्होंने अपने अमूल्य परामर्श देकर पत्रिका सम्पादन के इस पुण्य कार्य में अपना विशेष सहयोग दिया।

सुरेन्द्र प्रताप
सम्पादक

विज्ञापनदाताओं से अनुरोधः

1. दिए गए विज्ञापन का प्रूफ फाइनल करने में अनावश्यक देरी ना करें।
2. नया विज्ञापन बुक करने के लिए विज्ञापन की CDR या PDF File ईमेल करें अथवा विज्ञापन की लिखित जानकारी व लोगो आदि ईमेल करें।
3. प्रूफ रीडिंग करते समय फोन/मोबाइल नम्बर, ईमेल व अन्य जानकारियां ठीक से जाँच कर लें। एक बार विज्ञापन फाइनल होने के बाद पुनः सुधार केवल अगले अंक में ही सम्भव हो पाता है।
4. विज्ञापन का एडवांस शुल्क ऑनलाइन द्वारा जमा करायें अथवा चैक पत्रिका के पते पर भेजें।

बैंक विवरणः

"**जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट**" **(Jitna Devi Seva Sansthan Trust)** के नाम बैंक चैक/डीडी होगें। बैंक-**भारतीय स्टेट बैंक (State Bank of India)**, शाखा - 16, कम्यूनिटि सैन्टर जमरूदपुर, ग्रेटर कैलाश-1, नई दिल्ली-110048 • फोन नं. - 011-29231327 • **खाता संख्या - 42550746731**, आई.एफ.एस.सी./आर.टी. जीएस./ई.सी.एस. कोड सं. - SBIN0001078 • माइकर कोड (MICR CODE) 110002042 • पैन नं. AAETJ7079A • सम्पर्क नं. 09953782813

संस्था को दिया गया दान आयकर की **धारा 80G** के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

वेद सब सत्य-विद्याओं की पुस्तक है, कैसे? -देखिये, ऐसे!

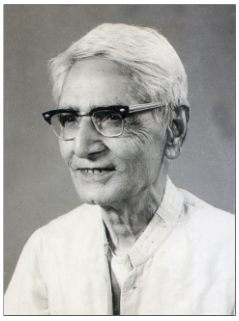

लेखक परिचय : डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार-कुलपति गुरुकुल कांगड़ी (1935), राज्य सभा सदस्य (1964)। लेखक - वैदिक साहित्य तथा होम्योपैथी, नैरोबी के अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन में अध्यक्ष (1978)। प्रादेशिक सरकारों ने तथा अन्य संस्थाओं ने साहित्यिक विद्वत्ता पर सम्मानित तथा पुरस्कृत किया। आपको आपकी पुस्तक 'समाजशास्त्र के मूल-तत्त्व' (1960) पर मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक देकर सम्मानित किया गया।

वेद-विषयक हम जो लेख लिख रहे हैं उनका मुख्य लक्ष्य आर्यसमाज के तीसरे नियम को समझाने का यत्न करना है। आर्य। समाज का तीसरा नियम है कि 'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है।' इस नियम को समझने के लिए ऋग्वेद का 'अदिति' शब्द बहुत सहायक सिद्ध हो सकता है। यह एक अद्‌भुत शब्द है। 'अदिति' के लिये ऋग्वेद (1.89.10) में निम्न मंत्र आया है :

अदितिः द्यौः अदितिः अन्तरिक्षं अदितिः माता सः पिता सः पुत्रः। विश्वेदेवाः अदितिः पंचजनाः अदितिः जातं अदितिः अदितिः जनित्वम्॥

इस मंत्र का अर्थ यह है कि संसार में जो कुछ है। 'अदिति' है। 'अदिति' शब्द 'दिति' से बना है। जो 'दिति' न हो वह 'अदिति' होगा। 'दिति' शब्द 'दोः अवखंडने' धातु से बना है। 'दिति' का अर्थ है- 'खंडित'; 'अदिति' का अर्थ हुआ-'अखंडित'। खंडित का अर्थ है-एक से दो, दो से तीन, तीन से चार-इस प्रकार बंटते जाना; अखंडित का अर्थ है-सदा-सर्वदा एक बने रहना, टुकड़ों में न बंटना। जितना भौतिक-ज्ञान है, जिसे हम 'विज्ञान' कहते हैं. वह सब 'दिति' के भीतर समा जाता है क्योंकि वह कभी सत्य माना जाता है, कभी गवेषणा करते-करते असत्य हो जाता है और छोड़ दिया जाता है। अगर सब-कुछ 'अदिति' है, जो जात या जनित्व है, वह सब 'अदिति' है, तो वेद भी 'अदिति' है, सत्य भी 'अदिति' है, वेद-ज्ञान भी 'अदिति' है। वेद-ज्ञान को 'अदिति' कहने का अर्थ हुआ 'अखंडित' ज्ञान, ऐसा ज्ञान जो सदा-सर्वदा एक बना रहता है, कभी बदलता नहीं-सदा सत्य, सनातन। इस 'अदिति' शब्द के लिये ऋग्वेद (8.18.6) में दो अन्य शब्दों का प्रयोग हुआ है जिससे हमारा विषय अधिक स्पष्ट हो जाता है। वह मन्त्र है:

अदितिर्नो दिवा पशुं अदितिर्नक्तं अद्वयाः।

अदितिः पात्त्वंहसः सदावृधा॥

इस मंत्र में 'अदिति' के लिये 'अद्वय' तथा 'सदावृध' शब्दों का प्रयोग हुआ है। 'अद्वय' का अर्थ है जो दो न हो; 'सदावृध' का पदच्छेद करके इसके दो अर्थ हो जाते हैं- 'सदावृध' अर्थात्, जो सदा बढ़ता रहे, विकसित होता रहे, एक से दो, दो से तीन-तीन से चार होता रहे, बंटता रहे; इसका दूसरा अर्थ है- 'सदा+अवृध', जो सदा एक रहे, एक से दो, दो से तीन न हो, बंटे नहीं, नित्य-सनातन, एक रूप में बना रहे। इस प्रकार वेद ने ज्ञान को तीन भागों में विभक्त किया है-'अदिति', 'सदावृध' तथा 'सदा-अवृध'। 'अदिति' वह ज्ञान है जो सदा एक रहता है, उसमें दो पक्ष नहीं हो सकते; 'सदावृध' वह ज्ञान है जो सदा बढ़ता रहता है, वृध होता है, बदलता रहता है, आज यह और कल वह; बढ़ेगा तो बदलकर ही तो बढ़ेगा। यह वह ज्ञान है जिसे आज की भाषा में 'विज्ञान' कहते हैं; 'सदा-अवृध' वह ज्ञान है जिसे हम पहले 'अदिति' कह आये हैं- 'सत्य-ज्ञान', 'अखंडित ज्ञान',-एक ज्ञान, न बदलने वाला ज्ञान, अवृध-ज्ञान या जिसे हम ईश्वरीय-ज्ञान कह सकते हैं। भौतिक ज्ञान सदा बढ़ता रहता है, सदावृध रहता है, बदलता रहता है, यह भौतिक विज्ञान है, इसका मनुष्य द्वारा आविष्कार हो सकता है; आध्यात्मिक ज्ञान सदा एक रहता है, 'अदिति' या 'अद्वय' है, सदा सनातन है, इसका आविष्कार नहीं हो सकता, यह सदा दिया जाता है। संसार में सदा एक रहने वाली अगर कोई वस्तु है, तो यह 'सत्य'

है, 'सत्य-ज्ञान' है। 'सत्य' सदा एक रहता है, अखंडित रहता है, वेद के शब्दों में कहें तो सत्य सदा 'अद्वय' है, 'अदिति' है, 'अवृध' है। यह नहीं हो सकता कि किसी बात के लिए हम कहें कि यह भी ठीक है, और उसकी विरोधी बात भी ठीक है। सत्य सदा 'अद्वय' होता है। उदाहरणार्थ, हिन्दू हो, ईसाई हो, मुसलमान हो, यहूदी हो, पारसी हो-सभी कहेंगे कि सत्य बोलना चाहिये, कोई नहीं कहेगा कि सच भी बोल सकते हैं और झूठ भी बोल सकते हैं। ये सब कहेंगे कि प्रेम करना चाहिये, कोई नहीं कहेगा- प्रेम भी करो और द्वेष भी करो; सब कहेंगे कि परोपकार करना उचित है, कोई नहीं कहेगा कि परोपकार भी करो, पर अपकार भी करो। ये तथा इस प्रकार के अनेक ऐसे आधारभूत है जिन्हें 'अ' अर्थात् उनमें दो पक्ष नहीं हो सकते ऐसा सब कोई कहते हैं। अगर 'अदिति' का अभिप्राय 'अद्वय' है तो वेद ने इस शब्द को उक्त मंत्र में 'सदावृध' शब्द के साथ जिसका अर्थ है-सदा वर्धमान, सदा बदलने वाला क्यों रखा? 'वर्धमान' तो वह तत्त्व है जो सदा बढ़ता रहता है। छोटे से बड़ा, बड़े से बहुत-बड़ा हो जाता या हो सकता है। आज जैसा है कल वैसा नहीं है, अर्थात् पहले जैसा नहीं है। जो चीज़ या जो विचार बदलता रहेगा वही तो बढ़ेगा। वेद के एक साथ 'अद्वय' तथा 'वर्धमान' को जोड़ देना एक रहस्य की बात है। इस रहस्य को खोलने का कुछ प्रयत्न हम पहले कर चुके हैं, कुछ अब प्रयत्न करेंगे। यजुर्वेद के 40वें अध्याय में 'विद्या' तथा 'अविद्या' इन दो शब्दों का उल्लेख करते हुए लिखा है:

विद्या (अध्यात्मज्ञान) और अविद्या (विज्ञान)

अन्यदाहुः विद्यया अन्यदाहुः अविद्यया।
इति शुश्रुम धीराणां येनस्तद् व्याचचक्षिरे॥
विद्यां च अविद्यां च यस्तद् वेद उभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतं अश्नुते॥

वेद के ये दोनों मंत्र विलक्षण हैं इनमें से पहले का अर्थ तो स्पष्ट है। प्रायः अक्षर-ज्ञान तथा पढ़ने-लिखने को हम 'विद्या' कहते हैं; वेद का कहना है कि 'विद्या' तथा 'अविद्या' के ये अर्थ नहीं है। इतना ही नहीं, इन शब्दों के यथार्थ अर्थ बतलाते हुए वेद का कहना है कि 'अविद्या' रूपी-विद्या से मनुष्य मृत्युंजय बन जाता है, मृत्यु को जीत लेता है, परन्तु 'विद्या' रूपी-विद्या से तो वह अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। वेद की यह विलक्षण घोषणा है, इसमें 'विद्या' तथा 'अविद्या'- दोनों को एक प्रकार से 'विद्या' ही कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक तथा लौकिक शब्दावली में जमीन-आसमान का अन्तर है। उक्त घोषणा से स्पष्ट है कि वेद यहां भौतिकवाद तथा भौतिक विज्ञान को 'अविद्या' कह रहा है, क्योंकि औषधि आदि भौतिक औषधियों से तथा उसी प्रकार के भौतिक साधनों से जीवन को दीर्घ किया जा सकता है, मृत्यु से लड़ा सकता है, मृत्यु-समुद्र को तैरा जा सकता है, किन्तु अमरत्व तो सिर्फ अध्यात्मवाद तथा अध्यात्मविज्ञान से ही प्राप्त होता या हो सकता है। इसलिए इस अविद्या को भी एक प्रकार की विद्या ही कहा गया है। तभी कहा है कि अविद्या-रूपी-विद्या से मृत्यु को तो तर जाते हैं- **'अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा'**-आगे कहा है कि **'विद्यया अमृतं अश्नुते'**- विद्या-रूपी-विद्या से अमर हो जाते हैं।

यह ठीक है कि हमारा ज्ञान, ज्ञान तभी कहला सकता है, जब वह 'वर्धमान' हो, आगे-आगे बढ़े। आज का वैज्ञानिक-जगत् इसलिए श्रेयस्कर माना जाता है क्योंकि आज जो बात ठीक मानी जाती है, कल वही परीक्षण तथा खोज करते-करते गलत मान कर छोड़ दी जाती है। अगर विज्ञान रुक जाए किसी जगह आकर खड़ा हो जाय, तो वह फेंक देने लायक होगा। परन्तु हमारी यह बात सिर्फ भौतिक विज्ञान पर ही लागू होती है जो एक भिन्न प्रकार की विद्या है; आध्यात्मिक विज्ञान पर नहीं जो दूसरे भिन्न-प्रकार की विद्या है। आध्यात्मिक तत्त्व सदा 'अद्वय', 'वर्धमान' होता हुआ भी 'अवर्धमान' की तरफ जाता है। 'हिंसा' से शुरू कर मनुष्य 'अहिंसा' पर जाकर रुक जाता है; 'असत्य' से शुरूकर 'सत्य' की खोज में भटकता है; चोरी-डाके-'स्तेय' से चलता चलता शान्ति सन्तोष 'अस्तेय' को जीवन का लक्ष्य बनाता है; पर-दारा-गमन या अब्रह्मचर्य और दुराचार में भटकता-भटकता 'ब्रह्मचर्य' तथा 'सदाचार' को परम ध्येय समझने लगता है। भौतिक-तत्त्व जब तक 'वर्धमान' तक सीमित रहते हैं, तब तक जीवन अपने ध्येय को नहीं पकड़ता। जब जीवन के 'वर्धमान' तत्त्व 'अवर्धमान' हो जाते हैं, जब वे हिंसा से अहिंसा, असत्य से सत्य, स्तेय में अस्तेय,

अब्रह्मचर्य से ब्रह्मचर्य, परिग्रह से अपरिग्रह तक पहुंच जाते हैं, तब मनुष्य 'अद्वय', 'अदिति', 'अवर्धमान', एक-नित्य-सनातन को पा लेता है। उसी 'अद्वय', 'अदिति', 'अखंडित' तत्व का वर्णन वेद में है। हमारे कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि वेद में सिर्फ अध्यात्मवाद का वर्णन है, भौतिकवाद या विज्ञान का वर्णन नहीं है। भौतिक ज्ञान जब बढ़ेगा, तो बढ़ते-बढ़ते उसकी सीमा भी कभी-न-कभी आयेगी। वृक्ष ऊंचा जाता है, परन्तु कहीं तो बढ़ना रुक ही जाता है। 'वर्धमान' जब 'अवर्धमान' हो जाता है, तब वही 'अद्वय' हो जाता है, 'अदिति' हो जाता है। भौतिकवाद जब रुक जाता है और जहां रुक जाता है, तब और वहां अध्यात्मवाद शुरू हो जाता है। इसी को ऋग्वेद में 'अद्वय', 'अदिति' या 'सदावृध' से 'सदा अवृध' कहा है।

जैसा हम पहले लिख आये हैं ज्ञान या तो 'वर्धमान' होगा या 'अवर्धमान' होगा। 'वर्धमान' ज्ञान भौतिक है, समय-समय पर मनुष्य की खोज के आधार पर बदलता रहता है, बढ़ता रहता है; 'अवर्धमान' ज्ञान आध्यात्मिक है, नित्य है, सनातन है, एक है, अद्वय है, अदिति है, बदलता नहीं, क्योंकि वेद का ज्ञान मनुष्य की खोज नहीं, ईश्वरीय देन है, इसलिये वेद में उसे 'अद्वय' तथा 'अदिति' कहा है। परन्तु ज्ञान का स्त्रोत मनुष्य तथा परमेश्वर दोनों हैं-इसलिये ज्ञान को वेद में 'सदावृधः' भी कहा है। 'सदावृध' के हमने दो अर्थ किये हैं। जब मनुष्य द्वारा खोज किये ज्ञान के लिए इस शब्द का प्रयोग होता है तब इसका अर्थ सदा, सर्वदा उत्तरोत्तर बढ़ने वाला, बदलने वाला अर्थ होता है; जब इस शब्द का प्रयोग ईश्वरीय-ज्ञान के लिए होता है, तब इसका अर्थ 'सदा-अवृधः', सदा एक रहने वाला, कभी भी न बदलने वाला, 'अद्वय', 'अदिति' अर्थ होता है। जैसे 'विद्या' तथा 'अविद्या' वेद के विलक्षण शब्द हैं, वैसे 'सदावृधः' भी वेद का विलक्षण शब्द है, जो 'सदावृधः' के रूप में भौतिक विज्ञान के लिए प्रयुक्त हुआ है, और 'सदा+अवृधः' के रूप में ईश्वरीय ज्ञान या वेद के लिये प्रयुक्त हुआ है।

मुण्डकोपनीषद् में इस बात की चर्चा करते हुए कहा है: **'द्वे विद्ये वेदितव्ये परा च अपरा च'। 'परा' क्या है? 'यया तदक्षरं अधिगम्यते सा परा'**- अर्थात् जिस विद्या से अक्षर-ब्रह्म का ज्ञान होता है वह 'परा-विद्या' है, अर्थात् 'आध्यात्मिक-विद्या'। इस कथन से स्पष्ट है कि जिस विद्या से क्षर-प्रकृति के विषयों का ज्ञान होता है वह 'अपरा विद्या' है, अर्थात् 'भौतिक-विद्या'। यजुर्वेद के 19वें अध्याय के 77वें मंत्र में इसी भाव को 'सत्य' तथा 'अनृत'- इन शब्दों से व्यक्त किया गया है। वहां कहा है: **'दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः। अश्रद्धां अनृते अदधात् श्रद्धां सत्ये प्रजापतिः'** - संसार की सब वस्तुओं को देखकर प्रजापति ने उन्हें दो भागों में विभक्त कर दिया-'सत्य' तथा 'अमृत'। 'सत्य' में सबको स्वाभाविक रूप से श्रद्धा होती है; 'अमृत' में सबको स्वाभाविक रूप से अश्रद्धा होती है। उक्त विवरण से स्पष्ट है कि वेद ने 'विद्या', 'सत्य' तथा 'परा' का एक ग्रुप बनाया है तथा 'अविद्या', 'अमृत' एवं 'अपरा' का दूसरा ग्रुप बनाया है। यजुर्वेद में 'विद्या' तथा 'अविद्या'- इन दोनों की महिमा का बखान है-'अविद्यया मृत्युं तीर्त्त्वा'- 'अविद्या' से मृत्यु को तरा जाता है। इससे स्पष्ट है कि वैदिक टर्मिनौलोजी में 'अविद्या' का अर्थ निरक्षरता या अज्ञान नहीं है। तो फिर वेद में 'अविद्या' का क्या अर्थ है? हमारी दृष्टि में वेद में 'अविद्या' का अर्थ भौतिकवाद या भौतिक विज्ञान है। भौतिक-आविष्कारों से मनुष्य संसार की सब सुख-सुविधाओं को भोगता हुआ, यन्त्रों तथा औषधियों के आविष्कारों से दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन की प्राप्ति कर सकता है जिसे वेद ने '**अविद्यया मृत्युं तीर्त्त्वा**' कहा है। हमारा कथन है कि वेद में भौतिकवाद या वर्तमान-विज्ञान को वह उच्च-स्थान नहीं दिया गया जो अध्यात्मवाद को दिया गया है। भौतिक-ज्ञान दिनों दिन बदलता रहता है, 'वर्धमान' है, इसलिए वेद ने उसे 'अविद्या', 'असत्य' तथा 'अपरा' विद्या कहा है; आध्यात्मिक ज्ञान सदा एक रहता है, 'अवर्धमान' है, इसलिये वेद ने उसे 'विद्या', 'सत्य' तथा 'परा' विद्या कहा है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वेदों में भौतिक विज्ञान का सर्वथा अभाव है। वेदों में भौतिक तथा अध्यात्मिक दोनों विद्यायें हैं, परन्तु मुख्यता आध्यात्मिक विद्या को ही दी गई है क्योंकि वही सत्य है, सनातन है, सब देश-काल में एक ही बनी रहती है।

सफल जीवन

जीवन का महत्त्व

डॉ. महेश विद्यालंकार

वेद ने शरीर को **"देवानां पुरः"** देवताओं की नगरी देवालय, अयोध्या, ब्रह्मपुरी, दैवीय नाव आदि नाम दिए हैं। यह तन संसार-सागर से पार उतरने की नौका है। यह देह आत्मा का घर और परमात्मा को प्राप्त करने का मन्दिर है। मनुष्य-योनि तक पहुँचने में लाखों योनियों को पार करना पड़ता है। जितने भी प्राणधारी जीव हैं, उनमें मानव-जन्म की महत्ता, उपयोगिता, सार्थकता और मूल्य सबसे अधिक है। मनुष्य सृष्टि का सुन्दरतम प्राणी है। महर्षि वेदव्यासजी ने महाभारत में कहा है-

नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्

जगत् में मनुष्य से बढ़कर उत्तम एवं श्रेष्ठ और कुछ नहीं है।

अनन्त जीवन यात्रा में नरतन ही ऐसा पड़ाव है, जिसको पाकर हम आवागमन के चक्र से छूट सकते हैं। मनुष्य-योनि से पतित होने पर जीव-पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्षादि योनियों को प्राप्त करता है। दुनिया की सबसे मूल्यवान् एवं महत्त्वपूर्ण वस्तु यह मानव-जीवन है। जो चीज बाजार में न मिले और न खरीदी जा सके, वह अमूल्य होती है। श्वासें पैसे से नहीं मिलते। जिन्दगी बाजार में नहीं बिकती। जीवन नदी के प्रवाह की तरह है, जो पानी आगे बढ़ गया, वह फिर वापस नहीं आता। जो श्वास, जीवन एवं समय निकल गया, वह फिर नहीं मिलता। शरीर का महत्त्व तभी तक है, जब तक श्वास चल रहा है। मनुष्य के पास अपार धन-सम्पदा और सब कुछ है, परन्तु शरीर में श्वास नहीं आ रहा है, तो सब व्यर्थ है। चलती श्वास का नाम ही जीवन है। श्वासों को सबसे बड़ा धन माना गया है। जीवन में सब कुछ मिल सकता है, किन्तु सब कुछ देकर भी मरने के बाद दुबारा जीवन नहीं मिल सकता, अतः जीवन का सार्थक सदुपयोग करो। जो माता-पिता चले गए, वे फिर कभी वापस नहीं लौटते। मुट्ठी में पानी और रेत भरने पर धीरे-धीरे निकलते रहते हैं, ऐसे ही आयु जल्दी-जल्दी जा रही है। जैसे आरा-मशीन लकड़ी को धीरे-धीरे काटती है, वैसे ही काल (समय) हमें खा रहा है। सूर्योदय से सूर्यास्त तक का समय पानी के प्रवाह की तरह पता ही नहीं चलता कि कहाँ और कैसे निकल जाता है। दीवार पर टंगी और हाथ में बंधी घड़ी हमें पल-पल चेतावनी और सचेत कर रही है। कभी समय ठहरता नहीं और गया हुआ समय दुबारा वापस आता नहीं है। समय बलवान् और परिवर्तनशील है। सावधान हो जाओ। हर प्रातः नये जन्म से और सायं मृत्यु से जुड़ी है। शंकराचार्य का यह कथन सत्य है-

कालः क्रीडति गच्छत्यायुः

समय के खेल में आयु बड़ी तेजी से जा रही है। समय हम सबको पका-पका कर खा रहा है। वेद का सन्देश है-

कालो अश्वो वहति

समय रूपी घोड़ा बड़ी तेजी से दौड़ा जा रहा है। वह एक पल भी रुक नहीं रहा है। शरीर में बचपन, यौवन, वार्धक्य (बुढ़ापा) आदि का परिवर्तन तेजी से हो रहा है। सामान्य व्यक्ति की जीवन-कहानी ऐसी है - सोमवार को जन्मे, मंगल को बड़े हुए, बुधवार को विवाह हुआ, गुरुवार को बच्चे हुए, शुक्रवार को बीमार पड़े, शनिवार को अस्पताल गए और रविवार को कहानी खत्म हुई। कुछ लोगों का धन को कमाने और कुछ लोगों का तन को सजाने, खिलाने तथा पिलाने में ही सारा जीवन निकल

जाता है। कुछ लोगों को जीवन भर पता ही नहीं चलता कि जीवन क्या है ? और क्यों मिला है ? इसको कैसे जीना है ? उन्हें पता ही नहीं होता कि यह अनमोल, दुर्लभ मानव-जन्म क्या है ? प्रेरक शब्द सचेत कर रहे हैं-

नरतन के चोले का पाना, बच्चों का कोई खेल नहीं,
जन्म-जन्म के शुभकर्मों का, होता जब तक मेल नहीं।

वर्तमान मनुष्य का जन्म न पहला और न आखिरी है। कर्मानुसार जीव शरीर बदलता रहता है। दुनिया में सबसे कीमती हमारा शरीर है। इसी के अस्तित्व से हम हैं। बिना शरीर के आत्मा का और बिना आत्मा के शरीर का कोई अस्तित्व एवं महत्त्व नहीं है। आत्मा और शरीर के परस्पर सहयोग से ही जीवन-यात्रा पूर्ण होती है। एक दूसरे के बिना दोनों अधूरे हैं। आत्मा की चेतनता से ही शरीर की गतिशीलता का पता चलता है। शरीर मकान है, इसका मालिक आत्मा है। मकान की कीमत तभी तक है, जब तक इसका मालिक आत्मा इसमें है। शरीर जड़ और आत्मा चेतन है। दोनों के संयोग का नाम जीवन है। शरीर से आत्मा के अलग होते ही शरीर की संज्ञा शव (मृत्यु) हो जाती है। गैस के सिलेन्डर की तरह यह हमारा शरीर है जैसे सिलेन्डर की गैस कब खत्म हो जाय, पता नहीं चलता है, ऐसे ही श्वास कब जवाब दे जाए, किसी को पता नहीं है। दवाइयों और खाने की चीजों पर जब हम समाप्ति की तिथि देखते हैं, तो जल्दी-जल्दी उन्हें प्रयोग में ले आते हैं। आश्चर्य है कि जीवन की एक्सपायरी तारीख नजदीक आ रही है। मृत्यु हम सबका तेजी से पीछा कर रही है। शरीर बर्फ की तरह निरन्तर पिघल (गल) और कमजोर हो रहा है, परन्तु हम भ्रम तथा अज्ञानता में जी रहे हैं कि - आयु बढ़ रही है। सच तो यह है कि प्रतिदिन आयु घट रही है। प्रति दिन सायंकाल का डूबता हुआ सूर्य, जिन्दगी का एक दिन कम कर रहा है। प्रेरक शब्द हमें सचेत कर रहे हैं -

जिन्दगी की कहे, हर घड़ी,
भजन कर ले घड़ी दो घड़ी,
घण्टी बज जाये कब कूच की,
मौत तेरे सिरहाने खड़ी।

समय थोड़ा है, विघ्न-बाधाएं और रुकावटें बहुत हैं। चलते- चलते, दौड़ते-दौड़ते, संग्रह करते-करते और जीवन के लिए धन-सम्पदा, साधन, सुविधाएं बनाते-बनाते पता ही नहीं चला कि कब जीवन की शाम हो गई। प्रेरक शब्द सत्य कह रहे हैं -

झगड़ों में दिन पूरा बीता, सपनों में बीती रात।
बचपन बीता, गई जवानी, आया बुढ़ापा हाथ॥

कितना बड़ा आश्चर्य है कि हम संसार में प्रत्येक कार्य उद्देश्य पूर्ण करते हैं। किसी से पूछो- कहाँ जा रहे हो ? उत्तर होगा-बाजार, दुकान, नौकरी एवं दफ्तर जा रहे हैं। किसी से जीवन के बारे में पूछो तो कोई उत्तर नहीं इस जीवन का क्या उद्देश्य है ? पता नहीं। हम क्यों जीवित हैं ? मालूम नहीं। हर काम के बारे में हमें पता है, मगर इतने कीमती दुर्लभ जीवन के उद्देश्य के बारे में कुछ पता नहीं। अधिकांश लोगों की यही स्थिति है। आदमी धन कमाने और भोगों को भोगने की कला में निपुण है। वास्तविक जिन्दगी से बेखबर एवं दूर है। आज का पढ़ा-लिखा समझदार व्यक्ति संसार के बारे में तथा भोग पदार्थों के बारे में बहुत कुछ जानता है, किन्तु अपने बारे में और जीवन लक्ष्य के बारे में कुछ नहीं जानता। उसे अपने बारे में सोचने, समझने, सुनने और करने की फुर्सत नहीं है। बेहोशी में उद्देश्यहीन एवं अन्तहीन दौड़ में दौड़ा जा रहा है। स्वयं को नहीं मालूम कि मेरी चाहत और मंजिल क्या है। ऐसे लोगों पर भजन की ये पंक्तियाँ सटीक हैं -

रात गंवाई सोयकर, दिवस गंवायो खाय।
हीरा जन्म अमोल यह, कौड़ी बदले जाय॥

यही आज के भौतिकवादी, भोगवादी, धनवादी एवं मायावी मानव की दु:खान्त त्रासदी है। पैसे की दौड़ तथा हाय-हाय में हमारी प्रसन्नता, सुख-शान्ति, मुस्कुराहट, अपनत्व, भाई-चारा, परिवार, स्वास्थ्य, सन्तोष आदि सब कुछ छिन रहा है। हमारे चेहरे अशान्त, बेचैन, रूखे-सूखे, वासनापूर्ण तथा भाव विहीन हो रहे हैं। चेहरों पर कठोरता, हिंसा, अतृप्ति, असन्तोष आदि के भाव आ रहे हैं। आज धन जीवन का आदि और अन्त बन रहा है। धन के

मुकाबले में आदमी की कीमत कम हो रही है। व्यक्ति, मशीन बनता जा रहा है। संवेदना, भाव-भावनाहीन मनुष्य और मशीन में कोई अन्तर नहीं होता है। सांसारिक जीवन यात्रा के लिए साधन सुविधाएं, भवन, गाड़ी धन-धान्य आदि जरूरी हैं। यदि व्यक्ति केवल साधनों के संग्रह, वृद्धि, रक्षा तथा देखभाल में ही सारी शक्ति, समय और सोच लगा दे, परन्तु जो जीवन का लक्ष्य है, उसे भूल जाय, तो इससे बढ़कर अनिष्ट एवं हानि कुछ और नहीं हो सकती। बढ़ती उम्र में धन की अपेक्षा, श्रेष्ठ धर्म-कार्य और पावन जीवन जीने को प्राथमिकता देनी चाहिए, यही सच्चा धन है।

आज लोग जीते हैं, मगर जीवन का पता ही नहीं है। व्यक्ति सारा जीवन चलता है, मगर पहुँचता कहीं नहीं है। कुछ लोगों का सारा जीवन सोने और रोने में निकल जाता है। कुछ लोग तो जीवन को जीते, ढोते, साँस लेते और समय पूरा करके चले जाते हैं। जीवन क्या है? क्यों मिला और कैसे जीना है? यह नहीं जानते। सुखी, स्वस्थ, शान्त और सन्तुष्ट जीवन जीना एक कला है। सबको जीना नहीं आता। जिन्हें सन्तुलन बनाकर होशपूर्वक जीवन जीना नहीं आता, वे जिन्दगी को बेहोशी तथा अज्ञानता में पूरा करते हैं। ज्ञानी व्यक्ति जीवन को सार्थक एवं उद्देश्यपूर्ण जीते हुए इहलोक तथा परलोक दोनों को सफल बना जाते हैं। हर मनुष्य सुख-शान्ति की चाह और दु:खों से छूटने के लिए दिन-रात दौड़ रहा है। मगर इन्सान जितना इनको पकड़ना और पाना चाह रहा है, उतना ही उनसे दूर हो रहा है। भौतिक सुख-भोग पदार्थों में क्षणिक सुख का आभास और परछाइयाँ हैं, पर वास्तविक आत्मिक सुख-शान्ति एवं प्रसन्नता इनमें किंचित् नहीं है। यही मृगतृष्णा कहलाती है। मृग रेगिस्तान में प्यास बुझाने के लिए दूर चमकती हुई रेत को पानी समझकर आगे-आगे दौड़ता है, मगर पानी आगे कहीं नहीं मिलता। दौड़ते-दौड़ते प्यासा का प्यासा ही मर जाता है। यही स्थिति हम सबकी है। सारा जीवन बेचैनी और अशान्त दौड़ में निकल जाता है। सच्चा सुख, शान्ति, प्रसन्नता, सन्तोष तथा आनन्द हाथ नहीं आता। इसी चाह और भटकन में दुर्लभ जीवन व्यर्थ निकल जाता है। प्रेरक पंक्तियाँ सच्चाई कह रही हैं-

खुशी की तलाश में, खुशी से दूर हो गए।
ढूंढने चले थे जिन्दगी, जिन्दगी से दूर हो गये॥

प्रसिद्ध प्रेरक कथानक है-जमीन की प्राप्ति की लालसा में एक लालची व्यक्ति दिनभर घोड़े पर दौड़ता रहा। उसे राजा ने कहा था, शाम तक तुम जितनी जमीन नाप लोगे, वह तुम्हारी हो जायेगी। उसका लोभ बढ़ता गया। वह लालच में भूल ही गया कि शाम को वापस भी लौटना है। दौड़ते-दौड़ते घोड़ा थककर गिर गया। वह लोभ लालच में पागल होकर पैदल ही दौड़ने लगा। शाम होने से पहले ही थक-हार कर गिर गया। लोगों ने कहा- इसके काम की यही दो गज जमीन ही असली है, बाकी इसका लालच था। आज तेजी से लोभ-लालच और संग्रह प्रवृत्ति बढ़ रही है। हर व्यक्ति अधिक से अधिक भोग और संग्रह के लालच में अन्धी दौड़ में भाग रहा है। भौतिकवादी चिन्तन और... और... और की चाह में इच्छाओं, भोगों और वासनाओं को बढ़ा तथा भड़का रहा है। जितना मिलता जाता है, उससे अधिक की चाह बनी रहती है। लालच के कारण सन्तोष सदा के लिए विदा हो जाता है। पैसे के रोगी की लालसा दिनों दिन बढ़ती जाती है। एक से दो, दो से चार में ही जिन्दगी निकल जाती है। रोज नये-नये भोग पदार्थों एवं साधन-सुविधाओं से बाजार, मॉल, शोरूम व घर भरते जा रहे हैं। आधुनिक सभ्यता और भौतिक उन्नति के सामने यह प्रश्नचिह्न है कि इतने साधन सुविधाएं व भोगपदार्थ सामने हैं, फिर भी मनुष्य अतृप्त, असन्तुष्ट, अशान्त, बेचैन, रोगी और परेशान है। जितनी चीजें व सामान बढ़ता जा रहा है, यह सच्चाई है कि उतना ही मनुष्य जीवन के वास्तविक रस, मस्ती, सुख-शान्ति एवं आनन्द से दूर हो रहा है। आज व्यक्ति ऊपर से भरापूरा नजर आता है, पर अन्दर खालीपन है। भौतिक विज्ञान और सभ्यता, मनुष्य के आन्तरिक जीवन-जगत् की समस्याओं को सुलझाने की बजाए उलझा रहे हैं।

शेष अगले अंक में.....

ईश्वर का अस्तित्व! दर्शन और विज्ञान की दृष्टि में

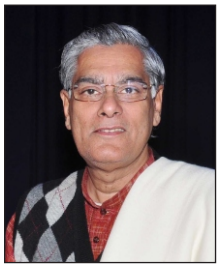

डॉ. वागीश आचार्य, प्राचार्य
आर्ष गुरुकुल, एटा (उ.प्र.)

दार्शनिक दृष्टि से विचार करने पर हम यह देखते हैं कि किसी न किसी रूप में सभी दर्शन मनुष्य के ऊपर किसी सत्ता को स्वीकार कर लते हैं। ईश्वर का स्वरूप है तथा जगत् में उसकी क्या भूमिका है? इस विवाद को अलग रहने दें तो जगत् की स्थिति तथा इसकी व्यवस्था की व्याख्या करते हुए मनुष्य से ऊपर किसी सत्ता को विवश होकर स्वीकार करना पड़ता है। सब तरह की दार्शनिक जोड़तोड़ के बाद भी इस स्थिति से छुटकारा नहीं पाया जा सकता। आगे के विवेचन से यह बात स्पष्ट होगी।

विचारणीय यह है कि जगत् में हमें एक नियमबद्धता के दर्शन होते हैं। सूर्य नित्य अपने नियम के अनुसार उदित होता है तथा यथासमय अस्त हो जाता है। चन्द्रमा तथा पृथ्वी आदि की गति का भी नियम है। इनकी गति का क्रम इतना सुव्यवस्थित है कि बहुत पहले ही यह मालूम किया जा सकता है कि अमुक दिन अमुक समय पर सूर्योदय होगा अथवा चन्द्रदर्शन होगा या नहीं अथवा सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण किस दिन कितने समय पर होगा? यह सब नियमबद्धता के कारण ही पूर्णज्ञात हो जाता है। पृथ्वी अपनी निश्चित गति से निश्चित परिधि में परिक्रमण करती है, जिससे दिन, रात तथा विभिन्न ऋतुओं का क्रम बनता है। इसी प्रकार सृष्टि की सभी घटनाओं में नियमबद्धता दृष्टिगत होती है। विश्व के कुछ प्रमुख वैज्ञानिकों की सम्मतियां इसके प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत हैं-

डॉ. फ्रेंक ऐलन (कनाडा विश्वविद्यालय में बायोफ़िजिक्स के प्रोफ़ेसर, फ़िज़ियोलाजिकल ऑप्टिक्स विशेषज्ञ) लिखते हैं कि जीवनधारणा करने के योग्य बनने के लिये पृथ्वी ने जितने रूप बदले हैं वे इतने अधिक हैं कि उन्हें आकस्मिक नहीं माना जा सकता। सबसे पहले पृथ्वी एक ऐसा गोला है जो आकाश में मुक्त रूप से लटका हुआ है, जो अपने ध्रुवीय अक्षों पर रोज घूमता है, जिससे एक के बाद दिन और रात बनते हैं, और पृथ्वी का यह गोला सूर्य के चारों ओर प्रतिवर्ष परिक्रमा करता है। इन दोनों गतियों से आकाश में पृथ्वी के परिभ्रमण में स्थिरता आती है, और अपने ध्रुवीय अक्षों पर घूमते हुए वह जो २३ अंश पर झुकी हुई है, उसके कारण ऋतुओं में नियमितता आती है। एक स्थान पर स्थित पृथ्वी पर उतने विविध प्रकार के वृक्ष वनस्पति नहीं हो सकते थे, जितने कि परिभ्रमणशील पृथ्वी पर हो सकते हैं। दूसरे जीवन-धारण करने में सहायक गैसों का वायुमण्डल काफी ऊंचा (लगभग ५०० मील) और इतना घना है कि वह तीस मील प्रति सैकण्ड के हिसाब से प्रतिदिन गिरने वाली दो करोड़ उल्काओं के घातक प्रभाव से पृथ्वी को बचा लेता है। कभी-कभी आकाश की विशालता की तुलना में पृथ्वी के छोटे आकार की चर्चा करके असमानता का उल्लेख किया जाता है, किन्तु यदि पृथ्वी का आकार भी उतना ही छोटा होता जितना चन्द्रमा का है, अर्थात् वर्तमान व्यास से उसका व्यास केवल एक चौथाई होता तो पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षणशक्ति न वायुमण्डल को संभाल पाती, न ही पानी को और तापमान भी इतना सीमातीत होता कि जीवन-धारण करना असम्भव हो जाता। यदि पृथ्वी का व्यास वर्तमान व्यास से अधिक हो जाये तो पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण-शक्ति भी बढ़ जायेगी, जिसका परिणाम यह होगा कि वायुमण्डल की ऊंचाई घट जायेगी तथा उसका दबाव बढ़ जायेगा, जिसका जीवन पर गम्भीर घातक प्रभाव पड़ेगा। यदि हमारी पृथ्वी का आकार सूर्य जितना

बड़ा हो जाये तो वायुमण्डल की ऊंचाई चार मील रह जायेगी तथा उसका दबाव प्रति इंच एक टन से अधिक बढ़ जायेगा। एक पौण्ड के प्राणी का भार तब १५० पौण्ड होगा। मनुष्यों का आकार घटकर इतना छोटा हो जायेगा, जैसे गिलहरी। अत: इस प्रकार के प्राणियों में किसी प्रकार के बौद्धिक जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती।

डॉ. जान क्लीवलैण्ड कोथरान (मिनेसोटा विश्वविद्यालय में विज्ञान विभाग के अध्यक्ष) का कहना है कि परमाणु की बनावट के ढांचे की खोज से यह बात प्रकट हो गई है कि रासायनिक व्यवहार के सब उदाहरणों में निश्चित नियम काम करते हैं, न कि अस्तव्यस्तता, या नियमशून्यता। अणुओं और परमाणुओं के संघात के रूप में द्रव्य, स्वयं अणु और परमाणु, उनके प्रोटोन, इलेक्ट्रोन और न्यूट्रोन नामक भाग, विद्युत् और स्वयं ऊर्जा, ये सब कुछ निश्चित नियमों का पालन करते हैं, न कि अकस्मात् के आदेशों का। यह सिद्धान्त इतना सत्य है कि १०१वें रासायनिक तत्व के १७ परमाणु उसकी पहचान के लिये काफ़ी हैं। निर्विवाद रूप से यह भौतिक विश्व एक व्यवस्था और क्रम का विश्व है-अव्यवस्था का नहीं। जब ऊर्जा नये द्रव्य के रूप में बदलती है, तब यह रूपान्तर नियम के अनुसार होता है और नवनिर्मित द्रव्य भी उन्हीं नियमों का पालन करता है जो पहले से विद्यमान द्रव्य पर लागू होते हैं।

डॉ. रसेल लोवेल मिक्स्टर (अमेरिकन साइंटिफिक एफ़िलियेशन के अध्यक्ष) कहते हैं कि जीवित पौधों और प्राणियों का विशाल वैविध्य में दृष्टिगत होता है और इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि अतीत में भी इनकी विशाल संख्या थी। इस पृथ्वी पर प्राणियों की सम्भवत: दस लाख नस्लें या जातियां होंगी। मैं केवल नस्लों के विषय में कह रहा हूँ, अलग-अलग प्राणियों के विषय में नहीं, क्योंकि उनकी संख्या निस्सन्देह ज्योतिष के आंकड़ों में नहीं आयेगी। पौधों की ही लगभग बीस लाख जातियाँ हैं। इन सबमें सर्वत्र क्रम और व्यवस्था है। प्राणियों की दस लाख जातियों में से किसी एक जाति को ही लें। इस प्रकार की सब जातियों के अलग वर्ग बनते हैं, और फिर प्रत्येक वर्ग का भी उपविभाजन किया जा सकता है। इस प्रकार विभाजन और उपविभाजन इच्छानुसार करते चले जायें किन्तु उन सबमें उस जाति की विशिष्टताएं और समानताएं मिलती चली जायेंगी। एक कठफोड़े (पक्षी) में विद्यमान सदृशतायें सब कठफोड़ों में मिलती चली जायेंगी। एक नस्ल से दूसरी नस्ल मिलती-जुलती होगी। इस प्रकार प्रकृति में कहीं क्रमशून्यता नहीं है, सर्वत्र क्रम विद्यमान है। मूल भौतिक पिण्ड-प्रोटोप्लाज़्म के भी जीवित पदार्थों में अनन्त रूप पाये जाते हैं तथा सैकड़ों विभिन्न वर्गीकरणों में वही सदृशतायें पायी जाती हैं।

डॉ. पाल क्लेरेंस एवरसोल्ड (अमेरिका के अणुशक्ति आयोग, ओकरिज आपरेशन्स में आइसोटोप विभाग के संचालक, आणविक भौतिकी तथा न्यूट्रान रेडियेशन आइसोटोप के विशेषज्ञ) का कथन है- 'यह विश्व एक सूक्ष्म नियमबद्धता से अनुशासित है। यह नियमबद्धता इतनी बड़ी है कि अभी हाल में ही जो स्पूतनिक या कृत्रिम उपग्रह तैयार किये गये हैं, उनका मार्ग पहले से ही बताया जा सकता है। इसी कारण अत्यन्त भौतिक घटना तथा क्रिया को भी हम गणितात्मक नियमों में व्यक्त कर सकते हैं।

इन वैज्ञानिक साक्षियों से स्पष्ट है कि जगत् की घटनाओं में नियमबद्धता परिलक्षित होती है। इन सृष्टि-नियमों का हम अतिक्रमण नहीं कर सकते। मनुष्य को इन नियमों के वशीभूत होकर चलना पड़ता है। सृष्टि में यदि कोई परिवर्तन मनुष्य करता है तो इन नियमों के अन्तर्गत ही, उनके बाहर नहीं जा सकता। विज्ञान की समस्त वर्तमान प्रगति प्रकृति के नियमों की अधिकाधिक जानकारी पर ही आधुत है। विज्ञान के समस्त आविष्कार प्राकृति के अज्ञात नियमों को जान लेने की तथा जानकर उपयोग में लेने की कथा कह रहे हैं।

प्रश्न यह है कि ये नियम किस प्रकार सुस्थिर हैं? निश्चय ही पृथ्वी के सर्वोत्कृष्ट प्राणी मनुष्य का इसमें कोई हाथ नहीं है। मनुष्य को स्वयं ही इन नियमों के

अन्तर्गत चलना पड़ता है। सूर्य के यथासमय उदित होने तथा पृथ्वी के यथाक्रम परिक्रमण में मनुष्य की शक्ति काम नहीं कर रही। डॉ. एवरसोल्ड का ही कथन है-'यह एक स्पष्ट तथ्य है कि विश्व की जो चमत्कारपूर्ण तथा रहस्यपूर्ण व्यवस्था है वह मनुष्य द्वारा निर्दिष्ट नियमों का पालन नहीं करती'।

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में ईश्वरवादी दार्शनिकों का स्पष्ट मत है कि यह व्यवस्था किसी दिव्य चेतना के द्वारा परिचालित है। इस प्रकार वे तो स्पष्ट रूप से मनुष्य में उच्च सत्ता पर विश्वास प्रकट करते हैं। किन्तु अनीश्वरवादी दार्शनिक कहेंगे कि ये सृष्टि-नियम स्वयं ही स्थिर है तथा स्वत: ही इन नियमों के वशीभूत यह संसार बन रहा है। उनके ऐसा मान लेने से ईश्वरवादी जिस प्रकार के ईश्वर का प्रतिपादन करते हैं, उसका निराकरण भले ही हो जाता हो। किन्तु मनुष्य से उच्च सत्ता की स्वीकृति बराबर बनी रहती है। अन्तर केवल वह होता है कि वे ईश्वर को हटाकर वहाँ सृष्टि-नियम नामक तत्त्व को अधिष्ठित कर देते हैं- अर्थात् यदि ईश्वर है तो उसकी व्यवस्था के अनुसार हमको चलना पड़ता है, और ईश्वर नहीं है तो भी वह व्यवस्था विद्यमान है जिसके अन्तर्गत चलना हमारी अनिवार्यता है, हम उन नियमों के बन्धनों से छूट नहीं सकते, उन नियमों का पालन चाहे अनचाहे करना पड़ेगा। यदि हम इस जगत् में व्यवस्था नाम की कोई वस्तु न मानकर सर्वत्र आकस्मिकता या अव्यवस्था का साम्राज्य स्वीकार करें तो भी यह स्थापना स्थिर रहती है, क्योंकि उस दशा में भी वह आकस्मिकता मनुष्य में ऊपर है, जिसके कारण यह संसार अस्तित्व में आया है या जिस आकस्मिकता के कारण हम सब संसार में जन्म लेकर यहाँ की सुखदु:खमय स्थितियों को भोगने के लिये विवश हैं।

एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो सकेगी- देवदत्त, यज्ञदत्त तथा सोमदत्त का एक साथ ही पृथ्वी पर मनुष्यरूप में उद्भव हुआ है। देवदत्त बलिष्ठ शरीर का स्वामी है, किन्तु बुद्धि सामान्य रखता है, यज्ञदत्त को निर्बल शरीर मिला है, किन्तु बुद्धि तीक्ष्ण है, सोमदत्त तीक्ष्ण बुद्धि तथा सामान्य शरीर रखता है, किन्तु जन्मान्ध है। इन प्रकार की विभिन्नता क्यों है? अन्य प्रकार के सुख दु:ख, रोग शोक इत्यादि के लिये व्यक्ति के स्वयं के पुरुषार्थ या पुरुषार्थहीनता को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, किन्तु यह विभिन्नता तो जन्म से ही है, इसका कारण क्या है? भौतिकवादी इसके उत्तर में कहेंगे कि यह एक आकस्मिक संयोग है। जैन तथा बौद्ध दार्शनिक कहेंगे कि यह कर्मविधान के अनुसार हुआ है। ईश्वरवादियों का उत्तर होगा कि यह उनके कर्मों के अनुसार ईश्वर की व्यवस्था के द्वारा हुआ है। एक और उदाहरण लें - एक बस में ५० यात्री बैठे हैं। बस अपने वेग से गन्तव्य की ओर जा रही है। अचानक बस के ब्रेक फेल हो जाते हैं तथा बस दुर्घटनाग्रस्त हो जाती है। यहां ड्राइवर की असावधानी को भी उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। उन ५० यात्रियों में से २५ घटनास्थल पर ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, १५ अस्पताल में आकर मर जाते हैं, उनमें से कुछ को अपने प्रियजनों से अन्तिम वार्ता करने का अवसर मिलता है, कुछ को नहीं। ५ यात्री ऐसे भी हैं जिन्हें खरोंच भी नहीं आयी तथा ५ का जीवन तो शेष रहा, किन्तु किसी की आंख नष्ट हो गयी, किसी का कोई अन्य अंग भंग हो गया।

इस घटना के विश्लेषण में भी यही तीन उत्तर होंगे भौतिकवादी की दृष्टि में यह मात्रसंयोग है। जैन, बौद्ध आदि दार्शनिकों के मत में कर्मविधान के अनुसार ऐसा परित हुआ है। ईश्वरवादी की दृष्टि से यह कर्मानुसार ईश्वर की व्यवस्था थी।

इसका अर्थ यह हुआ कि यदि यह आकस्मिक संयोग था तथा अन्य इसी प्रकार की घटनाएं भी मात्र आकस्मिक संयोग हैं तो आकस्मिक संयोग एक ऐसा तत्त्व है जो कि मनुष्य से ऊपर है तथा जिस पर मनुष्य का कोई वश नहीं। (आकस्मिक) संयोगवश ही हम उत्पन्न हुए हैं तथा (आकस्मिक) संयोगवश ही हम मर जायेंगे। हम संयोग के हाथों के खिलौने हैं, संयोग पर हमारा कोई वश नहीं। यदि कर्मविधान को मानते हैं तो उस बस के यात्रियों का उस बस-दुर्घटना में कोई तात्कालिक प्रत्यक्ष कर्म नहीं

था। कर्मविधान के सिद्धान्त के अनुसार उन यात्रियों के भिम्न-भिन्न प्रकार के पिछले समय अथवा पूर्वजन्म के कर्म रहे होंगे, जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें इस स्थिति में आना पड़ा। इसका तात्पर्य यह हुआ कि कर्म का नियम एक ऐसा शाश्वत नियम है जिसका उल्लंघन मनुष्य नहीं कर सकता और इस प्रकार कर्म विधान को मनुष्य से उच्च सत्ता स्वीकार कर लेना पड़ता है। यहाँ यह भी विचारणीय है कि उस दुर्घटनाग्रस्त बस के सभी यात्री चेतन हैं, किन्तु कर्म का नियम एक बुद्धिरहित वस्तु है, फिर किस प्रकार एक अचेतन चेतनों का नियामक हो सकता है? जैन दार्शनिक इसका समाधान करते हैं कि चेतन जीव जैसा कर्म करते हैं उसके अनुसार उनकी बुद्धि भी वैसी ही बन जाती है, जिससे वे कर्मफलभोग का समय आने पर इस प्रकार के कृत्य कर बैठते हैं जिससे उनको अपने कर्मानुसार फल भोगना पड़ता है। किन्तु इस बस दुर्घटना में हम देखते हैं कि बस में बैठे किसी यात्री ने उस समय कोई चेष्टा इस प्रकार की नहीं की जो कि दुर्घटना का कारण मानी जा सके, न ही बस-चालक की कोई चेष्टा अनुचित थी, ब्रेक फेल होने में ड्राइवर का कोई दोष नहीं। यह कहकर इसका समाधान नहीं किया जा सकता कि ड्राइवर ने चलने से पहले ब्रेकों की परीक्षा नहीं की, यही उसका बुद्धिदोष था, जिससे सब जीवों को अपना कर्मफल भोगना पड़ा, क्योंकि बस की यात्रा में कई बार ब्रेकों का प्रयोग हो चुका था, उस समय ब्रेकों ने सफलतापूर्वक काम किया था। यदि यह कहा जाय कि जिन जीवों को कर्मफल भोगना था, उन्हीं की बुद्धि स्वत: इस प्रकार प्रेरित हुई कि वे उस बस में बैठे, जिसमें बैठने के कारण उन्हें वह फल भोगना पड़ा, तो भी समस्या जहाँ की तहाँ रहती है- क्योंकि एक तो ५० चेतन व्यक्तियों की बुद्धि का एक साथ प्रेरित होना, दूसरे, जड़ ब्रेक का स्वयं फेल हो जाना, तीसरे फल-प्राप्ति में विभिन्नता, ये तीन स्थितियाँ यह मानने पर विवश करती है कि या तो कर्मविधान स्वयं कोई चेतन तत्त्व है जो जीवों की शक्ति से अधिक सामर्थ्यवान है, जो उन्हें कर्मफल भोगने के लिये विवश करता है, अथवा यदि वह जड़ है तो किसी अप्रत्यक्ष शक्ति के कारण इस प्रकार सुसम्बद्ध है कि सब जीवों को कर्मानुसार अवश्य फल भोगना पड़ता है, कोई उससे बच नहीं सकता ।

इन दोनों स्थितियों में हम यही स्वीकार कर लेते हैं कि कर्मविधान अथवा सृष्टिनियम एक ऐसी सत्ता है जो समस्त विश्व का नियमबद्ध संचालन कर रही है इस स्थिति में तथा ईश्वरवाद में कोई विशेष अन्तर नहीं रह जाता। ईश्वर वादियों का ईश्वर से तात्पर्य यही तो होता है कि एक ऐसी सत्ता जो कि इस विश्व का नियमन करती है तथा मनुष्य जिसके आगे विवश है। जैन तथा बौद्ध दर्शन के अनुसार कर्मविधान तथा सृष्टिनियम ही प्रमुख है-वे नियम शाश्वत है, उन नियमों के अन्तर्गत समस्त विश्व को चलना पड़ता है- पृथ्वी का सर्वोत्कृष्ट प्राणी मनुष्य भी उनका उल्लंघन नहीं कर सकता-जीव यदि जगत् में कोई परिवर्तन करते हैं, तो उन सृष्टिनियमों के अन्दर रहते हुए ही-उन नियमों का अतिक्रमण सम्भव नहीं। इस सिद्धान्त को स्वीकार करना यह मानना है कि सृष्टिनियम ही जगत् के नियन्ता हैं- इससे केवल इतना अन्तर हुआ कि ईश्वर को हटाकर वहाँ सृष्टिनियम को स्थापित कर दिया गया।

डॉ. राधाकृष्णन् बौद्ध दर्शन का विवेचन करते हुए कर्मविधान के विषय में यही मत व्यक्त करते हैं कि संसार में घटनाओं के क्रम में एक गहन विधान कार्य करता दिखायी देता है। क्षणिक घटनाओं से पूर्ण यह संसार एक विशेष विचार की यथार्थता को प्रतिबिम्बित करता है, जिसे चाहे कर्म कहें या औचित्य का विधान कहें। इस विधान का विरोधी अन्य कोई विधान नहीं है। इस बाह्य महत्व की पृष्ठभूमि को माने बिना यह संसार का सारा तमाशा केवल मायाजाल या छायाचित्र ही रह जायेगा। कर्म का अनुशासन संसार में व्याप्त है। इसकी क्रियात्मकता मौलिक विधान को सशक्त बनाती है। अब यह मनुष्य का काम रह जाता है कि वह इसके साथ साम्य स्थिर कर सके। संसार सदा से इस विधान के द्वारा शासित होता आया है, अब भी शासित हो रहा है तथा भविष्य में भी

इसी से शासित होता रहेगा। इससे यह ध्वनित होता है कि यह विधान सर्वोपरि है तथा ईश्वरवादियों के मत में जो स्थान ईश्वर का है वही कर्मवादियों के मत में कर्मविधान तथा सृष्टिनियम का है। इसी बात को ध्यान में रखकर डॉ. राधाकृष्णन् आगे लिखते हैं-"शरीरधारी स्रष्टा के विषय में तो बुद्ध का प्रतिवाद भले ही है किन्तु उक्त विचार के सम्बन्ध में उन्हें भी आपत्ति नहीं, क्योंकि यह एक नित्य सिद्धान्त है। बुद्ध यह कभी नहीं कहेंगे कि कर्म का सिद्धान्त एक ऐसी शक्ति है जिसमें मानसिक शक्ति का नितान्त अभाव है। ऐसा तत्त्व विवेकशक्ति से रहित नहीं हो सकता जो विद्युदणुओं (आयोनों) की रचना करता हो एवं ऋणात्मक विद्युदणुओं (इलेक्ट्रोनों)का निर्माण करता हो, जो परमाणुओं को एकत्र करके अणु एवं अणुओं से नाना लोकों की रचना करता है, जो विश्व का क्रियाशील मस्तिष्क है-जबकि हम ईश्वर के सम्बन्ध में इसमें अधिक और कुछ नहीं जान सकते कि वह एक परम विधान है। डॉ. राधाकृष्णन् का यह कथन एक गहन सत्य का उद्घाटन करता है, वस्तुतः हम ईश्वर के सम्बन्ध में इससे अधिक कुछ नहीं जान सकते कि वह एक परम विधान है। जगत् में विधान तथा व्यवस्था देखकर ही तो ईश्वर का अनुमान किया गया है, और बौद्ध तथा जैन दार्शनिक भी जगत् के विधान अथवा व्यवस्था का निषेध नहीं करते, वे केवल इतना करते हैं कि उस परम विधान को ही सर्वोपरि स्वीकार कर लेते हैं, यहाँ तक कि चार्वाक भी उस विधान को स्वभाव के नाम से स्वीकार करता है। चार्वाक-मत में मोर तथा अन्य पशु-पक्षियों की विचित्रता, चन्दन की सुगन्ध, सुख, दुःख, जरामरण, यह सब स्वभाव से ही हैं। अग्नि स्वभाव से ही ज्वलनशील है, पानी स्वभाव से ही प्रवाहशील है, समस्त संसार स्वभाव से ही चल रहा है। अर्थात् प्रत्येक वस्तु का अपना स्वभाव है, वह उस स्वभाव के अनुसार अवश्य कार्य करेगी, अतः इससे भी यही परिणाम निकलता है कि स्वभाव ही सर्वोपरि है, तथा उसी से यह जगत् नियन्त्रित है। स्वभावरूपी विधान विश्व का नियमन करता है। यदि विश्व में सब कुछ अस्तव्यस्त है तो वह अस्तव्यस्तता ही एक सर्वोपरि विधान के रूप में स्वीकृत होगी। अर्थात् एक अस्तव्यस्तता या अव्यवस्था के द्वारा यह जड़जगत् तथा हम सभी जीव परिचालित होने के लिये विवश होते हुए किसी अज्ञात दिशा की ओर गतिशील हैं। स्वभाव को मानें, कर्मविधान या सृष्टिनियम को मानें अथवा ईश्वर को मानें, ये सभी धारणायें प्रकारान्तर से किसी सर्वोच्च सत्ता की स्वीकृतिमात्र हैं। कोई सत्ता मनुष्य से उच्च अवश्य है, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् नियन्त्रित है, फिर चाहे उसे स्वभाव का नाम दें, कर्मविधान या सृष्टिनियम कहें या उसे ईश्वर शब्द से अभिहित करें। जगत् की व्याख्या का प्रत्येक प्रयास इसी बिन्दु पर आकर विराम पा लेता है।

Reg. No.: 3588

VIKAS ARORA

VIKAS MOTOR

ALL TYPES OF COMMERCIAL & PRIVATE CAR SALE & PURCHASE

C-24, 2nd Floor, Sanwal Nagar, Opp. Sadiq Nagar, New Delhi-110049

Mob.: +91-9911150670, +91-9958372126, +91-9811150775

E-mail : vikasmotor@gmail.com

हमारे दैनिक जीवन में आर्यसमाज के दस सिद्धान्त

प्रो. विनय कुमार 'विद्यालंकार'
प्रोफेसर संस्कृत एवं प्राचार्य, राजकीय महाविद्यालय, बेतालघाट, नैनीताल

बहुश्रुत उक्ति है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अर्थात् मनुष्य को समाज की आवश्यकता होती है, वह एकाकी जीवनयापन नहीं कर सकता। वैसे तो मनुष्येतर प्राणी भी समूहों में रहते हैं, परस्पर आश्रित भी होते हैं, सहयोग व सुरक्षा का भाव भी देखा जाता है, किन्तु वे किसी व्यापक उद्देश्य का चिन्तन नहीं कर सकते और न क्रियान्वयन कर सकते। वेदों में जिस समाज की परिकल्पना प्राप्त होती है उसके कर्मानुसार चार विभाग भी मिलते हैं-ज्ञान-विज्ञान को आधार बनाकर जीवन संचालन, रक्षा एवं न्याय हेतु जीवन का समर्पण, कृषि व व्यापार हेतु समर्पित जीवन तथा सेवा को समर्पित जीवन। दूसरे शब्दों में कहें तो अज्ञान, अन्याय व अभाव को दूर करने वाले तीन वर्ग तथा इन तीनों में से किसी की विशेष योग्यता न होने पर सेवा की भावना से जीवन को चलाना।

सृष्टि के आदि से दीर्घावधि तक इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु मानव जीवन समर्पित रहा, जिनके माध्यम से पुरूषार्थ चतुष्ट्य की सिद्धि (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) प्राप्त करना। जब समाज में पतन प्रारम्भ हुआ तो उपर्युक्त उद्देश्यों से भटकता हुआ मानव बहुत अधोपतन या दुर्दशा तक पहुँच गया, ऐसे घनघोर पतन काल में मानव जीवन के व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक एवं वैश्विक स्तर पर उद्देश्य बदल गये, जिसका परिणाम कुरीतियों, कुप्रथाओं, अवैदिक व अवैज्ञानिक सिद्धान्तों का बोलबाला हो गया। ऐसे में भारतवर्ष के मानव समाज में सुधार के लिए अनेक महापुरुषों ने प्रयास किए।

उन्नीसवीं शताब्दी में नवजागरण के पुरोधा महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने मानव समाज की जागृति हेतु अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। अन्य सुधारकों ने-ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, सत्यशोधक समाज, थियोसिफकल सोसाइटी आदि संगठनों की स्थापना की। महर्षि दयानन्द जी ने इन सभी के कार्यों व सिद्धान्तों में किसी न किसी रूप में अपूर्णता अनुभव की, क्योंकि वे सभी सामाजिक कुरीतियों का जनक भी धार्मिक मान्यताओं एवं धार्मिक उपदेष्टाओं को ही मान रहे थे, किन्तु महर्षि जी ने धर्म के आदि स्रोत, ज्ञान के आदि स्रोत वेदों को सुधार का आधार बनाया व वेद वर्णित सम्बोधन 'आर्य' को गुणवाचक मानकर कहा कि 'आर्यः ईश्वर पुत्रः' मानव समाज को केवल दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-आर्य एवं अनार्य या आर्य एवं दस्यु। वेद एवं ईश्वर की आज्ञाओं को जानने वाले, मानने वाले एवं उन पर चलने वाले आर्य होते हैं तथा उनके विपरीत चलने वाले 'अनार्य' या 'दस्यु' कहलाते हैं।

ऐसे आर्यों का उद्गम स्थल भारतभूमि (आर्यावर्त) ही था इसको दृष्टिगत रखकर उन्होंने अपने सुधारवादी आन्दोलन की बागडोर जिस संस्था (संगठन) को सौंपने का संकल्प लिया उसको 'आर्यसमाज' नाम दिया। 'आर्यसमाज' संस्था के सदस्यों के लिए जो दस सिद्धान्त बनाए वे अत्यन्त उपयोगी, सर्वदा प्रासंगिक, सर्वस्वीकार्य व व्यक्ति से लेकर परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व को उन्नति के मार्ग पर ले जाने वाले हैं।

जिन दस सिद्धान्तों को 'आर्यसमाज के नियम' के रूप में प्रदान किया, उनका दैनन्दिन जीवन में क्या महत्व व उपादेयता है उस पर संक्षेप में विचार करना इस आलेख का उद्देश्य है।

आर्यसमाज के दस नियम (सिद्धान्त)-

प्रथम नियम-"सब सत्य विद्या एवं जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।" मनुष्य के लिए यह विचारणीय प्रश्न रहा है कि ज्ञान

का आधार व मूल स्रोत क्या है। यह तो हम कहते हैं कि गुरु-परम्परा से ज्ञान प्राप्त होता चला आ रहा है, साथ ही दूसरी मान्यता है कि मनुष्य के पास अन्वेषण क्षमता है जिसके द्वारा प्रकृति में फैले हुए ज्ञान की खोज करता रहा है। प्रश्न यह उठता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वप्रथम ज्ञान किसके द्वारा प्रदान किया गया? प्रथम गुरु कौन था? महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में भी इस प्रश्न का समाधान किया-"स एषः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्" (योगदर्शन) अर्थात् वही परमात्मा गुरुओं का भी गुरू (प्रथम गुरू) है जो किसी काल में बंधा हुआ नहीं है। प्रथम नियम में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सब सत्य विद्याओं की बात की है-**'सब सत्य' एवं 'सत्य विद्या'**- प्रथम विचार करें कि सब सत्य क्या है? उत्तर मिलता है जो 'तत्व' सदैव सत्य है, सत्तावान् है, नित्य हैं, न उत्पन्न होते हैं और न विनष्ट होते हैं वे तीन ही तत्व हैं-'ईश्वर', 'जीव' एवं मूल 'प्रकृति', ये तीनों सत्य तत्वों का एवं इनकी विद्या (ज्ञान) का आदि मूल अर्थात् निमित्त कारण वह परमेश्वर है। इसका अर्थ यह न लिया जाय कि ईश्वर से है जीव व प्रकृति उत्पन्न होते हैं। ऋषिवर कहते हैं कि इनकी विद्या का आदि कारण वह परमेश्वर है, ज्ञान का आधार परमेश्वर है। इसी नियम का दूसरा भाग है "जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उनका भी आदि मूल परमेश्वर है।" प्रश्न उठता है कि 'पदार्थ विद्या' क्या है? पदार्थ कहते ही मस्तिष्क में आता है मैटर-जड़ पदार्थ या भौतिक तत्व, किन्तु वास्तविक अर्थ यह नहीं है। पदार्थ शब्द का विच्छेद कीजिए-पद + अर्थ = पदार्थ। पद अर्थात् शब्द, 'अर्थ' वह वस्तु जिसके लिए पद का प्रयोग हुआ है जैसे गौ, अश्व, हस्ती ये सब पद हैं और 'गौ' कहते ही जिस पशु विशेष का ग्रहण होता है वह गलकम्बल वाला, चार पैर, दो सींग, एक पूँछ वाला दूध देने वाला पशु गौ विशेष है। आशय यह हुआ कि 'पद' वेद ज्ञान को कहा है तथा 'अर्थ' लोक (ब्रह्माण्ड) में वह वस्तु जिसके लिए 'पद' प्रयुक्त हुआ है। पदार्थ का अर्थ हुआ वेद का ज्ञान जो सृष्टि में यथार्थ घटित होता है। महर्षि दयानन्द जी प्रत्येक विषय को गम्भीरता से लेते हुए स्पष्ट करते हैं यही उनका 'ऋषित्व' या 'वैशिष्ट्य' है।

इस प्रकार प्रथम नियम मनुष्यों के ज्ञान विषयक प्रश्नों का समाधान करता है कि यह समस्त विद्याएं या ज्ञान उस परमपिता परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में ही चार ऋषियों-अग्नि, वायु, आदित्य एवं अंगिरा द्वारा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद के रूप में समस्त मानव जाति के लिए प्रदान किया। इसलिए यह कहना कि मनुष्य तो प्रकृति में भटकता रहा और स्वयं खोज करता रहा, सत्य नहीं है। यह सृष्टि उस ज्ञानवान् सर्वोच्च सत्ता ने रची है और उसी ने जीवन एवं जगत् दोनों का गूढ़ ज्ञान भी प्रदान किया है जिसे 'वेद' कहा जाता है। हम जीवन में अपनी बुद्धि को ज्ञान पिपासु बनाकर वेद के ज्ञान को व्यवहार में लाने का प्रयास आजीवन करते रहें एवं अपने प्रश्नों का समाधान वेद ज्ञान के माध्यम से करते रहें।

द्वितीय नियम- "ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान् न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सुष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।"

इस नियम का प्रत्येक विचारशील मनुष्य के लिए महर्षि जी ने प्रणयन किया, ईश्वर के विषय में किसी जिज्ञासु के जितने प्रश्न या जिज्ञासाएँ हो सकती हैं, उन सभी का समाधान इस नियम में होता है। सर्वप्रथम ईश्वर का स्वरूप व्यक्त किया कि वह 'सच्चिदानन्द स्वरूप' है। वैदिक त्रैतवाद सिद्धान्त की स्थापना की इतनी सरल विधि और कहीं नहीं मिलेगी जितनी वैदिक चिन्तन में है। जिस जगत् को हम देखते हैं वह केवल 'सत्' है, Exit करता है। वर्तमान दृश्यमान् जगत् का मूल कारण (Basic cause) सदैव Exit करता है जिसे 'सत्' कहा जाता है, चेतन जीवात्मा जो जन्म-मरण में आता है वह 'सत्' एवं 'चित्' है जो सदैव (तीनों कालों में) सत्तावान् भी है और 'चित्' (चेतन) भी है, एवं परमेश्वर (सर्वोच्च सत्ता) सत् भी है, चित् भी है और आनन्द स्वरूप भी है, उसका आनन्द स्वतः है, सर्वदा है, एकरस है, इसलिए वह सच्चिदानन्द स्वरूप है, दार्शनिक चिन्तन के आधार पर कहें तो परमात्मा नित्य शुद्ध,

नित्य बुद्ध एवं नित्य मुक्त है जबकि जीवात्मा शुद्ध भी है व अशुद्ध भी हो जाता है। जीवात्मा बोधयुक्त भी होता है अर्थात् निमित्त से बुद्ध भी होता है और अबुद्ध या अबोध भी रहता है इसी प्रकार जन्म-जन्मान्तर के शुभ कर्म एवं उपासना से मुक्त हो सकता है किन्तु नित्य मुक्त नहीं है। जीवात्मा का आनन्द समय सीमा में होता है जबकि ईश्वर सदैव आनन्द स्वरूप होने से 'सच्चिदानन्द' है। इसी ईश्वर के 18 विशेषण या गुण इस नियम में बताए हैं जिनके द्वारा ईश्वर का सत्य स्वरूप स्पष्ट होता है। आनन्द की कामना वाले मनुष्य को उसी परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए जिसके ये गुण हैं इन्हीं गुणों से गुणी का साक्षात्कार संभव है।

इस नियम में महर्षि जी ने सगुण और निर्गुण के विवाद का भी तार्किक समाधान दिया है- जैसे परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी दयालु आदि सत्तात्मक गुणों के कारण सगुण तथा अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि आदि अभावात्मक गुणों के कारण निर्गुण है। इसी नियम के एक-एक गुण की विस्तृत व्याख्या की जा सकती है जो उसके प्रति विश्वास एवं श्रद्धा को सिद्ध करने में सहायक हो सकती है।

तृतीय नियम- "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है" जो वेद ज्ञान सृष्टि के आदि में परमात्मा द्वारा प्रदान किया गया वह किसी काल, वर्ग, स्थान विशेष के लिए नहीं था अपितु सार्वभौमिक, सार्वकालिक एवं सार्वजनीन (Universal Truth) था, आगे चलकर वह केवल पुरोहित की पोथी बनकर रह गया था। जो वेद मन्त्र भौतिक विद्याओं से लेकर, अध्यात्म की पराकाष्ठा तक का ज्ञान प्रदान करते थे, कोई भी क्षेत्र या पक्ष ऐसा नहीं था जिनका समस्त ज्ञान वेद में न हो, उन्हें केवल यज्ञ-कर्मकाण्ड तक सीमित करते हुए समाज के 90 प्रतिशत वर्ग को वेद पढ़ने व सुनने से भी वंचित कर दिया गया था। उस ज्ञान को सर्वग्राह्य (Open to all) बनाने का यह नियम है। ऋषि ने वेद मन्त्र के माध्यम से ही घोषणा की, वेद सभी विद्याओं के भण्डार हैं और सभी के लिए हैं-

ओ३म् यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय चारणाय च॥
(यजुर्वेद)

महर्षि जी का तर्क सटीक है कि यदि वेद ज्ञान ईश्वर का है तो वह पूर्ण है, पूर्ण सर्वज्ञ ईश्वर का ज्ञान एकांगी नहीं हो सकता तथा वह परमपिता अपनी किसी सन्तान (किसी की वर्ण या जाति) को उस ज्ञान से वंचित नहीं कर सकता।

चतुर्थ नियम- "सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।" महर्षि दयानन्द जी सदियों बाद ऐसी दिव्यात्मा के रूप में जन्मे जिनका सर्वाधिक आग्रह सत्य के प्रति रहा है यदि सच्चा 'सत्याग्रही' कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। वे जब विद्या या ज्ञान की बात करते हैं तब 'सत्य विद्या' का प्रयोग करते हैं, ईश्वर के सत्य स्वरूप की बात करते हैं और मनुष्य जीवन में सत्य की स्थापना के लिए कहते हैं, सत्य से कदापि समझौता नहीं करने का सन्देश देते हैं। सत्य जब भी ज्ञात हो जाए तभी आग्रह व पूर्ण धारणा को तुरन्त त्यागकर सत्य को स्वीकार करने में ही कल्याण है, जब सत्य ग्रहण करने की भावना होगी तो असत्य को छोड़ने में भी कोई कष्ट नहीं होगा। भौतिक जीवन के दैनन्दिन व्यवहार में यदि सत्य को ग्रहण करने की प्रवृत्ति बन जाय तो अनेक कष्टों का निवारण सरलता से हो जाता है किन्तु मनुष्य क्षुद्र स्वार्थ व क्षणिक सुख के लिए सत्य के स्थान पर असत्य का सहारा लेता है वही समस्त दुःखों का कारण बनता है। महर्षि पतंजलि का योगसूत्र कहता है कि जीवन में सत्य की प्रतिष्ठा या स्थापना हो जाने पर मनुष्य की समस्त क्रियाओं का फल उसके अनुसार प्राप्त होने लगता है- "सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्" (योगदर्शन)।

पंचम नियम- "सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिए"-यह नियम प्रत्येक विचारशील मनुष्य को शिक्षा देता है कि उसे प्रत्येक कार्य स्वयं विचार कर करना चाहिए, किसी भी कार्य को करने से पहले उस कार्य के सम्बन्ध में निश्चय कर लेना

वेद प्रवाह

पत्रिका भेंट करते हुए

जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट के संस्थापक व सम्पादक श्री सुरेन्द्र प्रताप द्वारा सम्मानित व्यक्तियों को पत्रिक भेंट करते हुए।

डॉ. रचना खन्ना जी को पत्रिका भेंट करते हुए।

डॉ. मीना वर्मा जी को पत्रिका भेंट करते हुए।

डॉ. विनोद मलिक जी को पत्रिका भेंट करते हुए।

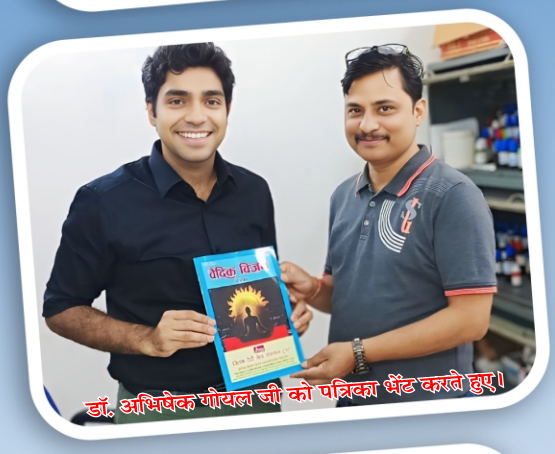

डॉ. अभिषेक गोयल जी को पत्रिका भेंट करते हुए।

सर्वसम्मान के संस्थापक श्री दीपक खन्ना जी को पत्रिका भेंट करते हुए।

श्रीमती शिखा राय जी, निगम पार्षद, ग्रेटर कैलाश, को पत्रिका भेंट करते हुए।

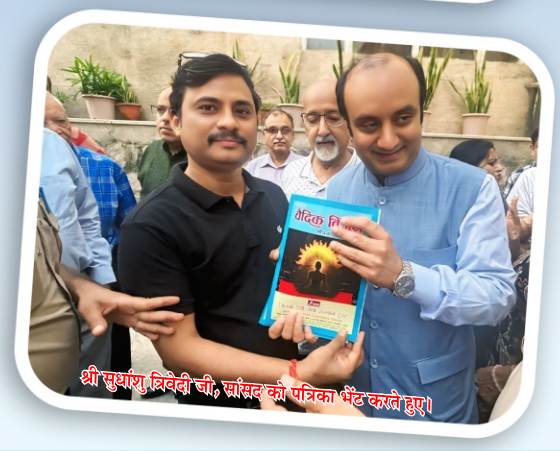

श्री सुधांशु त्रिवेदी जी, सांसद को पत्रिका भेंट करते हुए।

वेद प्रवाह

वार्षिक खेल दिवस एवं विज्ञान प्रदर्शनी

अमृत पॉल आर्य शिशु शाला में
वार्षिक खेल दिवस एवं विज्ञान प्रदर्शनी
जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट द्वारा
आयोजन किया गया।

वेद प्रवाह

Diabetes Camp (मधुमेह शिविर)

महर्षि दयानन्द चैरिटेबल मेडिकल सैन्टर,
ग्रेटर कैलाश-1, नई दिल्ली में
जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट द्वारा
मधुमेह शिविर का आयोजन किया गया।

वेद प्रवाह

Eye Camp (नेत्र जाँच शिविर)

महर्षि दयानन्द चैरिटेबल मेडिकल सैन्टर,
ग्रेटर कैलाश-1, नई दिल्ली में
जितना देवी सेवा संस्थान ट्रस्ट द्वारा
नेत्र जाँच शिविर का आयोजन किया गया।

चाहिए कि वह कार्य धर्म के दायरे में आता है या अधर्म के? यह निर्धारण कैसे हो कि 'धर्मानुसार' क्या है? तो महर्षि जी ने स्वयं उत्तर दिया कि धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार कर लें, जो सत्य है वही धर्म एवं जहाँ असत्य आजाय वहीं 'अधर्म हो जाता है। महर्षि की धर्म की कसौटी भी 'सत्य' ही है। यह नियम मनुष्य को जगाता है कि धर्म के क्षेत्र में आँख बन्द करके किसी के पीछे चलते जाना 'अन्धविश्वास' की प्रथा भयंकर है। धर्म को सत्य की कसौटी पर कसना आवश्यक है, सत्य का विचार ही धर्म का विचार है।

षष्ठ नियम- "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।"

अभी तक व्यक्तिगत जीवन तक केन्द्रित विषय रहे जिससे समाज की मूल इकाई व्यक्ति सत्य विद्याओं का ज्ञाता हो, दृढ़ ईश्वर विश्वासी हो, वह भी सच्चे ईश्वर को जानकर उसकी उपासना करे व जीवन को सत्य, वेद ज्ञान से आलोकित कर धर्म मार्ग पर चले। अब आर्यों का समष्टि के प्रति कर्तव्य बताया गया है वह है 'संसार का उपकार करना', यह विचार कितना उदार व व्यापक है, किसी समाज विशेष के उपकार हेतु आर्य समाज नहीं है, केवल हिन्दू समाज के लिए ही या केवल भारत वासियों के लिए हो-ऐसा नहीं है अपितु आर्य समाज को संसार के उपकार का दायित्व महर्षि जी ने दिया है। इस नियम में विशेष विचारणीय बात यह है कि संसार का उपकार क्या है? क्या केवल बाह्य रूप से सहयोग देने या दान आदि से संसार का उपकार सम्भव है? प्रायः लोग यही कहते हैं कि भूखे को भोजन, नंगे को वस्त्र, जिसके पास घर नहीं है उसे आवास देना उपकार है। इस नियम की व्यापक सोच पर चिन्तन कीजिए-शारीरिक उन्नति एवं आत्मिक उन्नति के बिना समाज का उपकार सम्भव नहीं है। रोगी समाज, दुर्बल एवं व्यसनी समाज, कुरीतिग्रस्त समाज, आत्मज्ञान रहित समाज व अभिमानी समाज को बाह्य रूप से कितना भी सहयोग कीजिए वह निरर्थक ही रहेगा जब तक कि सभी मनुष्यों की शारीरिक, आत्मिक व सामाजिक उन्नति हेतु सहायता न की जाय। यह ज्ञान के द्वारा अधिक सम्भव है। वर्तमान में भी कहा जाता है कि किसी को धन या सुविधा बिना परिश्रम के मिल जाय तो वह अपाहिज हो जाता है इसलिए उसे धनवान् होने के लिए, बलवान् बनाने के लिए व आत्मिक शक्ति बढ़ाने के लिए उचित ज्ञान देना चाहिए। इसीलिए आर्यसमाज ने गुरुकुल खोले, व्यायामशालाएं खोलीं, अनाथालय खोले, गौशालाएं खोलीं, बाल विवाह बन्द करवाए, वृद्ध विवाह भी बन्द करवाए। जिस मातृ शक्ति को वेदज्ञान से वंचित किया या उन्हें वेद पढ़ने का अधिकार दिलाया। इन सभी कार्यों में सामाजिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त हुआ।

सप्तम नियम- "सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।" यह नियम आर्यसमाज के सदस्यों/अनुयायियों का आचारशास्त्र है। आर्य के व्यवहार की आधारशिला विश्व प्रेम है, साथ ही यह विश्व प्रेम धर्म के अंकुश या नियंत्रण में है क्योंकि निरंकुश 'प्रीति' मोह बन जाती है। धर्मयुक्त प्रेम यथायोग्य बर्ताव के रूप में प्रकट होता है। जैसे दूध देने वाली गौमाता व हिंसक शेर आदि के साथ एक समान प्रेम संभव नहीं, उसी प्रकार समाज के हितकारी के साथ व घातक आतंकी के साथ एक जैसा प्रेम संभव नहीं है। भारतवर्ष में व्यक्तिगत अहिंसा के सिद्धान्त को राजाओं ने जब अपनाया तो परिणामस्वरूप पराधीनता (गुलामी) हुई। इसलिए महर्षि ने स्पष्ट कहा कि धर्मानुसार भी हो और यथायोग्य भी हो। जो भले सदाचारी धार्मिक व्यक्ति हैं वे चाहे किसी भी स्थान, मत या वर्ग के हों, उनसे प्रीतिपूर्वक व्यवहार करना चाहिए एवं जो हिंसक अत्याचारी, दुराचारी एवं दुष्ट आतंकी है उनके साथ यथायोग्य दण्ड देना ही धर्म ही होगा।

अष्टम नियम- "अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए" प्रत्येक मनुष्य का उद्देश्य आत्मोन्नति ही हो, इसलिए अविद्या का नाश अर्थात् उसे दूर करके विद्या को स्थापित करना कर्तव्य है। महर्षि

पतंजलि जी ने जो योगदर्शन में कहा, उसे महर्षि जी ने सत्यार्थप्रकाश के नवम् समुल्लास में उद्धृत किया है-'अविद्या' का अर्थ है अनित्य को नित्य, अपवित्र को पवित्र, दु:ख को सुख और अनात्मा को आत्मा समझना। विद्या इसके विपरीत सत्य ज्ञान का नाम है। इस प्रकार की विद्या केवल पुस्तकों से प्राप्त नहीं हो सकती यह तो जीवन भर के सुसंस्कारों से ही प्राप्त होती है। इसलिए विद्या की प्राप्ति हेतु सोलह संस्कार, पंच महायज्ञ, आश्रम व्यवस्था का पालन व समाज में कर्माधारित वर्ण व्यवस्था का पालन ही सहायक होता है।

नवम नियम- "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए" यह नियम भी मनुष्य के व्यक्तित्व को व्यापक व विस्तृत बनाने वाला है।

यह नियम सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझने की बात कहता है। व्यक्ति का हित समाज के हित के बिना सम्भव ही नहीं है। समाज में यह अज्ञान फैला हुआ है कि मैं सुखी हो जाऊँ औरों से क्या? इसी क्षुद्र स्वार्थ भावना ने मानव को पतन के गर्त में पहुंचा दिया है। महर्षि जी ने न केवल मानव जाति अपितु उससे भी आगे चलकर प्राणिमात्र के हित की चिन्ता की है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक शरीर है और सभी प्राणी उसके अंग है, इसी प्रकार मानव जाति तक भी देखें तो सभी व्यक्ति समाज रूपी शरीर के अंग हैं, कोई अंग अपनी वृद्धि या विकास दूसरे अंगों की वृद्धि के बिना कदापि नहीं कर सकता। 'संसार की उन्नति की भावना रखना उसके लिए कार्य करना वस्तुत: अपनी उन्नति करना ही है। यह कृपा नहीं अपितु प्रत्येक मानव का कर्तव्य है। आज व्यक्ति केन्द्रित व्यवस्था दिखाई पड़ रही है जिसे Selfishness कहा जाता है। इस गम्भीर रोग का उपचार इस नियम में है 'खुदगर्जी' की प्रवृत्ति को समाप्त करने में यह नियम अत्यन्त उपयोगी है।

दशम नियम- "सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।" यह मानव समाज को सच्चे अर्थों में समाज बनाने का नियम है। स्वतन्त्रता व स्वच्छन्दता का भेद करता है। समाज तथा व्यक्ति के अधिकारों को नियम व अनुशासन में बांधने का यह नियम है। समाज का सदस्य होने से मनुष्य कहाँ तक स्वतन्त्र रह सकता है एवं कहाँ उसके लिए बन्धन आवश्यक है, इस बृहत् तत्व को एक सूत्र में कह दिया गया है। समाज का शासन वहीं तक होना चाहिए जहाँ तक समूचे समाज के हित या अहित का प्रश्न हो। "वैयक्तिक हित साधन में प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है।" यह बात उन्नीसवीं शताब्दी में महर्षि कह रहे हैं यह जहाँ समाज के शासन को मर्यादित करने वाला नियम है वहीं व्यक्ति को भी समाज नियमों के नियन्त्रण में रहना आवश्यक बताया गया है।

वस्तुत: समाज हित और व्यक्ति हित दोनों का ध्यान रखना व्यक्ति का ही दायित्व है। व्यक्ति समाज हित का ध्यान रखे और समाज व्यक्ति को उसकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अवसर भी दे, व्यक्ति अपनी प्रत्येक क्रिया में समाज के भले पर दृष्टि रखे एवं उसका चिन्तन करके कार्य करे तथा समाज व्यक्तियों के अधिकारों का रक्षक है, समाजशास्त्र का सार ये दो सूत्र हैं।

इस प्रकार महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा स्थापित आर्यसमाज विश्वकल्याण के लिए स्थापित हुई, जिसके सदस्यों/अनुयायियों के लिए पहले 28 नियम बनाए थे। कालान्तर में उन्होंने ही वे सभी उद्देश्य इन दस नियमों (सिद्धान्तों) में समाहित कर दिए। वस्तुत: मनुष्य योनि कर्म स्वातंत्र्य की योनि है, भोग योनि भी है। मनुष्य संसार में तीन कर्तव्यों की पूर्ति के लिए है-(1) अपने साथ क्या करना चाहिए? (2) दूसरों के साथ क्या करना चाहिए? (3) परमेश्वर के साथ क्या करना चाहिए? ये दस सिद्धान्त इन्हीं तीन कर्त्तव्यों का स्पष्ट विधान करते हैं, जो प्रत्येक मनुष्य द्वारा स्वीकार किए जा सकते हैं। ये सार्वभौम व सार्वकालिक सिद्धान्त हैं जो सार्वजनीन भी हैं। इनको व्यवहार में लाने पर भोग और अपवर्ग दोनों उद्देश्यों की सिद्धि सम्भव है।

■■

शंका समाधान

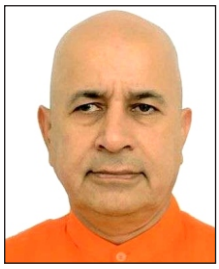

स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय रोजड़ गुजरात

"कुछ लोगों को सम्मान की बहुत तीव्र इच्छा होती है, और वे सम्मान प्राप्ति के लिए बहुत प्रयत्न भी करते हैं। इसी उद्देश्य से कुछ अच्छे काम भी करते हैं। इसके लिए कुछ धन भी खर्च करते हैं।"

वे चाहते हैं कि "हमारा नाम सदा जीवित रहे। यहाँ तक कि हमारे शरीर के मरने के बाद भी हमारा नाम चलता रहे। लोग हमें सम्मान पूर्वक याद करें।"

सांसारिक स्तर पर ऐसा सोचना और अच्छे काम करना बुरी बात नहीं है। यह न्याय की बात भी है, कि "जो व्यक्ति अच्छे काम करता है, उसे सम्मान मिलना भी चाहिए। इसलिए वेदों के अनुसार अच्छे काम करके सम्मान की इच्छा करना सांसारिक स्तर पर दोष नहीं है।"

"हां, आध्यात्मिक क्षेत्र में तो यह बाधक अवश्य है।" परंतु सब लोग इतने ऊंचे आध्यात्मिक स्तर वाले नहीं होते। "वे आत्मा परमात्मा बंधन मुक्ति आदि विषयों को गहराई से नहीं समझते। इसलिए वे अपने सांसारिक स्तर पर ही जीवन जीते हैं। ऐसे लोग यदि सम्मान प्राप्ति की इच्छा से शुभ कर्म करें, समाज की सेवा करें परोपकार करें दान देवें, तो वेदों के अनुसार इसमें बुराई नहीं मानी जाती।"

"तो जो लोग ऐसा चाहते हों, वे अपने परिवार की रक्षा तो करें ही। इसके साथ-साथ वे समाज के अन्य लोगों की भी रक्षा करें। उनकी भी उन्नति में योगदान देवें। ऐसे परोपकार के काम करने से उनकी मृत्यु के बाद भी उनका नाम जीवित रहेगा।"

❋❋❋

"कुछ लोग मीठे शब्द बोलते हैं, और कुछ लोग कड़वे।" बिना बोले तो व्यवहार नहीं चल सकता, इसलिए अपना दैनिक व्यवहार चलाने के लिए कुछ न कुछ बोलना तो पड़ता ही है। "परन्तु कुछ लोग तो इतना अधिक बोलते हैं, कि उन्हें जबरदस्ती चुप कराना पड़ता है।" "अनेक साधक लोग अपनी आध्यात्मिक उन्नति करने के लिए, अधिक बोलने की प्रवृत्ति को कम करने के लिए मौन व्रत का पालन भी करते हैं।" यह अच्छी बात है।

कहने का सार यह है, कि "व्यवहार चलाने के लिए सभी को कुछ न कुछ बोलना तो पड़ता है। उसके बिना तो व्यवहार नहीं चल पाता।" "तो बोलने के संबंध में दो विकल्प हैं। मीठे शब्द बोलें, या कड़वे।" इस संदर्भ में ऐसा सोचना चाहिए, कि "जब बोलना ही है, तो मीठे शब्द ही क्यों न बोले जाएं।"

"यदि आप मीठे शब्द बोलेंगे, तो परिणाम बहुत अच्छा होगा। इससे आपस के संबंध मधुर और दृढ़ बने रहेंगे।" "यदि कड़वे शब्द बोलेंगे, तो संबंध कमजोर हो जाएंगे।" "जैसे किसी व्यक्ति को पोलियो का रोग हो जाता है। वह उठना बैठना चलना फिरना आदि भी ठीक प्रकार से नहीं कर पाता।" "इसी प्रकार से कड़वे शब्द बोलने पर संबंधों की भी ऐसी स्थिति हो सकती है। तब दूसरों के साथ आपके संबंध वैसे अच्छे नहीं रहेंगे, जैसे मधुर शब्दों को बोलने पर होते हैं।" "तब आपके संबंधों में भी वैसा ही दोष आ जाएगा, जैसा किसी के शरीर में पोलियो का रोग होने पर दोष आ जाता है।"

"अत: अपने संबंधों को पोलियो जैसे ख़तरनाक रोग से बचाने के लिए, मीठे शब्दों का प्रयोग करें, इसी में बुद्धिमत्ता है।"

❋❋❋

प्रत्येक व्यक्ति अपने भविष्य को सुखमय बनाना चाहता है। "परंतु केवल इच्छा मात्र से तो कार्य सिद्ध नहीं होते। उस इच्छा के अनुकूल परिश्रम भी करना पड़ता है, तब वह इच्छा पूरी हो सकती है।"

लोग इस बात को प्राय: नहीं जानते, कि "मेरा भविष्य

सुखमय कैसे बनेगा ?" इस प्रश्न का उत्तर है, कि "आपको अपने 'स्वभाव' को अच्छा बनाना पड़ेगा। यदि आपका स्वभाव अच्छा होगा, तो आपका भविष्य भी अच्छा होगा, सुखमय बनेगा।"

आप जानना चाहेंगे, कि "स्वभाव का भविष्य से क्या संबंध है?" इसका उत्तर यह है, कि "जैसा व्यक्ति का स्वभाव होता है, वह दिन भर वैसे ही कार्य करता है, दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करता है। और जैसा व्यवहार वह दूसरों के साथ करता है, उसी के अनुसार उसको वैसा ही प्रतिफल मिलता है। जो उसे प्रतिफल मिलता है, वही उसका भविष्य है।"

इस बात को सरल शब्दों में यदि कहें, तो ऐसे कहा जाएगा, कि "यदि आपका स्वभाव अच्छा है, आप में अच्छे गुण हैं, जैसे सभ्यता, नम्रता, सेवा, परोपकार, दान, दया इत्यादि, तो आप इन उत्तम गुणों के स्वभाव वाले होकर दिनभर ऐसे ही अच्छे अच्छे कार्य करेंगे, दूसरों को सुख देंगे। जब आपके स्वभाव के अंतर्गत इन उत्तम गुणों के कारण दूसरों को सुख मिलेगा, तो दूसरे लोग भी आपको प्रतिफल में सुख देंगे। इस प्रकार से आपका भविष्य आपके स्वभाव पर ही आधारित है।"

जिस व्यक्ति का स्वभाव ठीक नहीं है। "जो लड़ाई झगड़ा, छल कपट, धोखा, अन्याय, असभ्यता कठोर भाषा, निंदा, चुगली आदि दोष करता है, तो संसार के दूसरे लोग भी इतने मूर्ख नहीं हैं, कि वे उसके दुष्ट व्यवहार को समझ न पाएं। वे उसके सब व्यवहारों को अच्छी प्रकार से समझते हैं, और कुछ ही समय बाद संसार के लोगों से भी उसको वैसा ही अर्थात दुखमय प्रतिफल मिलता है।"

"ऐसी स्थिति में जो कुछ बुद्धिमान और पूर्व जन्म का कुछ-कुछ संस्कारी व्यक्ति होता है, वह अपनी भूल समझ जाता है, और उसे दूर करके अपने स्वभाव को ठीक कर लेता है। तब भी उसका भविष्य धीरे-धीरे सुधर जाता है।"

"परंतु जिसके संस्कार अधिक ही दुष्टतापूर्ण होते हैं, जो ऐसी स्थिति में भी नहीं सुधरता, उसका भविष्य तो सुखमय नहीं हो सकता। वह तो जीवन भर ऐसे ही संसार के दूसरे लोगों से दंड और दुख भोगता रहेगा, और यूं ही अपमानित होता रहेगा। उसका जीवन तो निष्फल हो जाएगा।"

"अतः अपने स्वभाव को अच्छा बनाएं। सभ्यता, नम्रता, सेवा, परोपकार, दान, दया इत्यादि, उत्तम गुणों को धारण करें, सबके साथ उचित व्यवहार करें। और अपने भविष्य को सुखमय बनाकर अपने जीवन को सफल करें।"

❋ ❋ ❋

संसार में न्याय और अन्याय दोनों चलते रहते हैं। "जब कोई आपका 'अपना' व्यक्ति, (माता पिता चाचा बुआ मौसी मामा आदि) आप पर अन्याय करता है, तो आप उसे सहन कर लेते हैं। जब कोई दूसरा पराया (अपरिचित) व्यक्ति आपके साथ अन्याय करता है, तब आप प्रायः उसे सहन नहीं करते।"

सामान्य रूप से कुछ सीमा तक यह बात चल सकती है, और संसार में चलती भी है। परंतु यह नियम हमेशा नहीं चल सकता। "अपने' और 'पराए' का अर्थ यह नहीं होता, कि जिसके साथ रक्त संबंध हो, अर्थात खून का रिश्ता हो, मामा चाचा बुआ मौसी इत्यादि ऐसा रिश्ता हो, तो वह अपना है, और सदा अपना ही रहेगा।" "उसके चाहे जितने अन्याय सहन करते रहो," ऐसा नियम नहीं है।

क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अल्पशक्तिमान है, उसकी सहन करने की एक सीमा होती है। वहीं तक वह ही वह सहन कर सकता है। "जब वह सीमा पूरी हो जाती है, तब वह अन्याय करने वाले को सावधान करता है। यदि अन्यायकारी व्यक्ति सावधान हो जाए, और आगे अन्याय करना बंद कर दे, तब तो ठीक है। वहाँ समस्या हल हो जाती है।" "और यदि वह अन्यायकारी व्यक्ति फिर भी अन्याय करना जारी रखे, तो उसे सहन करने की सीमा पार हो जाने पर, उसके बाद कोई 'अपना' और 'पराया' नहीं होता।"

इतिहास इस बात का साक्षी है, कि "अन्याय की सीमा पूरी होने पर, श्रीकृष्ण जी महाराज ने अपने सगे मामा कंस का नाश किया। इसी प्रकार शिशुपाल भी रिश्ते में उनका भाई लगता था। *-शेष भाग अगले अंक में.....*

वैदिक परंपरा और उसकी वैज्ञानिकता

डॉ. देवकृष्ण दाश
उपनिदेशक, वैदिक शोध वेद-संस्थान, नई दिल्ली

वैदिक परंपरा

वेदेषु भवं वैदिकम् = वेदों में, अर्थात्, वेदमंत्रों में जो परंपरा गर्भित या वर्णित है वही वैदिक परंपरा है। वेदानुयायी जनों में विशेषतः भारतीय साहित्य-समाज-संस्कृति में इसका व्यापक प्रभाव दिखाई पड़ता है।

वैदिक परंपरा विश्व की प्राचीनतम परंपरा है। चारों वेदों को तथा वेदों से संबंधित साहित्य को आधार बनाकर इसका निर्माण हुआ है–जो ज्ञान, कर्म, उपासना, विज्ञान, चिकित्सा, अर्थशास्त्र, धनुर्वेद, आदि शाखाओं की निर्वाहिका है।

इस परंपरा के स्वरूपों को परिभाषित करते हुए महर्षि जैमिनी लिखते हैं, **तेषामृग् यथार्थवशेन पाद-व्यवस्था, गीतिषु सामाख्या, शेषे यजुःशब्दः** (जैमिनीय सूत्र 2.1. 35-37), अर्थात्, 'वैदिक परंपरा को ऋग्वेद छंदोबद्ध पद्यों से, सामवेद विविध लयात्मक गानों से और यजुर्वेद गद्यात्मक शब्दों से परिभाषित करते हैं।' अथर्ववेद को प्राणवेद, आत्मवेद और अमृतवेद कहा जाता है जो याज्ञिक विधानों के साथ साथ आयुर्वेद, विज्ञान, राजनीति शास्त्रों पर विशेष विचार प्रस्तुत करता है।

वैदिक परंपरा के मूलभूत सिद्धांत–मनुष्य मात्र के धर्म, सभ्यता, इतिहास, दार्शनिक विचार, आध्यात्मिक अनुभूतियां, आदि चारों वेदों के मंत्रों में वर्णित हैं। ऋग्वेद इन विचारों को अपने 10,552 मंत्रों से स्पष्ट करता है। यजुर्वेद 1975 मंत्रों द्वारा, सामवेद 1875 मंत्रों से और अथर्ववेद 5977 मंत्रों द्वारा इन्हें स्पष्ट करते हैं।

वैदिक परंपरा के उपलब्ध साहित्य के रूप में–4 वेद, 16 ब्राह्मण गंथ, 7 आरण्यक ग्रंथ, 11 उपनिषदें, महाभारत, रामायण, 18 प्रमुख पुराण, संगीत, कला, विज्ञान, गणित, आदि की पुस्तकें उच्च प्रशंसित हैं। मानव निर्माण पक्ष, सदाचरण, नैतिक मूल्यबोध और आदर्श जीवन-यापन की शिक्षाएं ही इस संस्कृति की आधारशिलाएं हैं।

विश्वभ्रातृत्व, विश्वबंधुत्व, वसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वे भवन्तु सुखिनः, आदि बहु-प्रसिद्ध सिद्वांत वैदिक संस्कृति को सर्वजनादृत करते हैं।

असतो मा सद्गमय। (बृहदारण्यकोपनिषत् 1.3.28), अर्थात्, अविद्या से विद्या की ओर ले चलें; **मा विद्विषावहै, सह वीर्यं करवावहै,** अर्थात्, हम गुरु-शिष्य दोनों परस्पर में द्वेषभाव न रखें और हम दोनों एक साथ पराक्रम प्रदर्शित करें, **अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते** (यजुर्वेद 40.14), अर्थात्, अविद्या के ज्ञान से मृत्यु पर विजय प्राप्त कर विद्या के परिज्ञान से अमरत्व को प्राप्त किया जा सकता है, **अन्यो अन्यमभिहर्यत** (अथर्ववेद 3.30.1), अर्थात्, एक दूसरे को कल्याण के मार्ग में ले चलें, आदि वैदिक बोधवाक्य भी इस वैश्विक संस्कृति में प्राण भरते हैं।

वैदिक संस्कृति के उदारवाद के कुछ स्मरणीय मंत्र निम्नलिखित हैं,

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। यजुर्वेद 36.18

अर्थ : मैं सभी प्राणियों को मित्रता की दृष्टि से देखूं और हम सभी को मित्र दृष्टि में देखते रहें।

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये।
अथर्ववेद 19.62.1

अर्थः हे ईश्वर! देवों में मुझे प्रियपात्र बनाओ। राजाओं में मुझे प्रिय करो। समदर्शी पुरुष समुदाय के समक्ष मुझे तुम प्रिय बनाओ। शूद्र में और आर्य समुदाय में भी मुझे प्रियपात्र बनाओ।

वैदिक परंपरा की वैज्ञानिकता

वैदिक ऋषि मंत्रद्रष्टा, सत्यद्रष्टा और तत्त्वद्रष्टा भी थे–**ऋषिदर्शनात्** (निरुक्त 2.11)। संयम और सदाचारपूर्ण जीवनशैली से जीवन निर्वाह करते हुए उन्होंने आध्यात्मिक और भौतिक समृद्धि की पर्याप्त खोजें की थीं। विपल-पल-

घटी-मुहूर्त के साथ 7 बारों, 12 मासों, 2 पक्षों, 60 संवत्सरों, 12 राशियों, 9 ग्रहों, अनगिनत नक्षत्रों और निहारिकाओं की पर्याप्त जानकारियां प्राप्त कर उन्होंने अपनी सभ्यता और संस्कृति को अधिकाधिक समृद्ध किया था।

वैदिक साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि आज के पदार्थ विज्ञान में प्रयोग होनेवाले पारिभाषिक शब्द, यथा –गति (Motion), शक्ति (Force), ऊर्जा (Energy), सामर्थ्य (Power), ताप (Heat), ध्वनि (Sound), प्रकाश (Light), चुम्बकत्व (Magnitism), विद्युत् (Electriciy), नाभिकीय ऊर्जा (Nuclear Energy), आदि उस समय भले ही इन सिद्धातों और अभिप्रायों के अनुरूप प्रयोग न होते हों, पर इन सभी पदार्थों की पूर्ण समझ के साथ सार्वजनिक व्यवहार अवश्य किया जाता था। अतींद्रिय और सूक्ष्म विषयों की खोज करने में ऋषि बड़े सिद्धहस्त थे। इनका कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्। ऋग्वेद 1.35.2

अर्थ : (कृष्णेन रजसा आ वर्तमानः) आकर्षण, यानी, गुरुत्वाकर्षण शक्ति से सदैव विद्यमान रहनेवाला यह सविता देव अपनी परिक्रमा के पथ में आनेवाले सभी गतिशील और स्थिर पिंडों पर अपना गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव डालता हुआ, सुनहरे रथ से आरूढ़ होकर सभी लोक-लोकांतरों को देखता हुआ गति करता है।

यहां सूर्य का गुरुत्वाकर्षण बल, उसका अपने कक्ष में परिक्रमण और उसके ऊर्जामय स्वरूप के बड़े आश्चर्यकारी वर्णन हमें प्राचीन वेदमंत्रों में मिल जाते हैं।

हैरानी की बात यह है कि जिस समय आधुनिक विज्ञान का विकास ही नहीं हुआ था। हमारे पास प्रयोग शालाएं नहीं थीं। विज्ञान के कुछ नए उपकरण भी नहीं थे, फिर भी उस समय प्रातिभ-चक्षु ऋषियों ने उपर्युक्त सिद्धांत को सिद्ध कर दिया था।

2. वेदमंत्रों में शिल्पविज्ञान के अनेक उदाहरण मिलते हैं, यथा–

आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः।
उत्सो वा तत्र जायतां ह्रदो वा पुण्डरीकवान्।
अपामिदं न्यसनं समुद्रस्य निवेशनम्।
मध्ये ह्रदस्य नो गृहाः पराचीना मुखा कृधि।
अर्थववेद 6.106.1, 2

अर्थ : हे मनुष्यो! तुम्हारे घर के आगे और पोछे फूलों से युक्त दूर्वा घास हों। वहां एक ह्रद हो या कमलों वाला तालाब हो। वहां जल का प्रवाह भी हो। समुद्र के समीप का स्थान हो, तालाब के बीच में हमारे घर हों। घर के प्रवेश और निर्गमन द्वार परस्पर विरुद्ध दिशा में हों।

यहां गृह की साज-सज्जा, वातानुकूलित भवन निर्माण की कलाओं का उदाहरण दिखाई पड़ता है।

3. भूगर्भ विज्ञान की चर्चा करता हुआ एक मंत्र कहता है,

हिरण्यं च मेऽयश्च मे श्यामं च मे लोहं च मे सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्। यजु. 18.13

अर्थ : खनिज पदार्थों में सोना, अयस्=लोहा या कांसा, श्याममम्=तांबा, लोहा, सीसा और त्रपु=बंग, रांगा या टिन, आदि पदार्थों को यज्ञ से, यानी, प्रयत्नों, उद्योगों से इसी पृथ्वी पर प्राप्त करें।

4. पर्यावरण के घटक तत्त्वों पर प्रकाश डालता हुआ वेद कहता है,

भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृद्।
अग्निः पिपर्तु-अयसा सजोषाः।
वीरुद्भिष्टे अर्जुनं संविदानं
दक्षं दधातु सुमनस्यमानम्। अर्थवेद 5.28.5

अर्थ : भूमि हरियाली शस्य-संपदा देकर हमारी रक्षा करती है। अग्नि अर्थात् प्रकाश रश्मियाँ हमें लौह तत्त्व प्रदान करती है। वृक्ष-वनस्पतियां सूर्य किरण के सहयोग से हमें बलशाली प्राणवायु अर्थात् ऑक्सीजन प्रदान करती हैं।

अतः प्रकृति को बचाना, उसे प्रदूषण से मुक्त रखना, और प्रकृति प्रदत्त उपहारों का सदुपयोग करना हमारा प्रमुख कर्तव्य होना चाहिए।

वैदिक परंपरा जितनी प्रेरणा दायिनी है, उससे भी कई अधिक गुणा समुज्ज्वल है उसकी वैज्ञानिकता। मंत्रद्रष्टा ऋषि प्रत्येक कार्य को तार्किक और वैज्ञानिक दृष्टि से समीक्षा पूर्वक किया करते थे। इसलिए तो हजारों वर्ष बीत जाने के बाद आज हम गर्व से बोल पाते हैं,

सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा। यजुवेद 7.14

अर्थ : वही वैदिक संस्कृति सर्वप्रमुख है। यह सदा ही विश्ववासियों द्वारा वरणीय–अनुकरणीय, आचरणीय रही है।

❋❋❋

'पापों में वृद्धि का कारण ईश्वर द्वारा जीवों को प्राप्त स्वतन्त्रता का दुरुपयोग'

मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

संसार में मनुष्य पाप व पुण्य दोनों करते हैं। पुण्य कर्म सच्चे धार्मिक ज्ञानी व विवेकवान् लोग अधिक करते हैं तथा पाप कर्म छद्म धार्मिक, अज्ञानी, व्यसनी, स्वार्थी, मूर्ख व ईश्वर के सत्यस्वरूप से अनभिज्ञ लोग अधिक करते हैं। इसका एक कारण यह है कि अज्ञानी लोगों को कोई भी बहका फुसला सकता है। यदि समाज में सच्चे आचार्य व विद्वान उपदेशक होते तो पूरे विश्व का समाज सत्य मार्ग पर चलने वाला तथा असत्य, अन्याय व अत्याचारों से घृणा करने वाला होता। वह अन्धविश्वासों एवं हानिकारक सामाजिक प्रथाओं से मुक्त होता। वह अपनी व दूसरों की उन्नति में सन्तुलन रखते और एक दूसरे के सहायक होते। अन्याय व शोषण कोई किसी पर न करता। परमात्मा सर्वशक्तिमान एवं न्यायकारी है। वह पाप कर रहे मनुष्य को उसकी आत्मा में पाप न करने की प्रेरणा तो करता है परन्तु पापकर्ता आत्मा को पाप करने से बलपूर्वक रोकता नहीं है। इसी कारण बहुत से लोग पाप करते हैं और ऐसे लोगों को देखकर कुछ सज्जन मनुष्य नास्तिक बन जाते हैं। ऐसा करना किसी भी बुद्धिमान व्यक्ति के लिए उचित नहीं है। ईश्वर के कर्म-फल विधान को समझने पर ईश्वर का मनुष्यों को पापों से न रोकने का आरोप सत्य सिद्ध नहीं होता।

ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान एवं न्यायकारी सत्ता है। मनुष्यों व सभी प्राणियों में विद्यमान जीव वा जीवात्मा भी एक चेतन, एकदेशी, ससीम, अणु परिमाण, अल्पज्ञ, कर्म करने में स्वतन्त्र तथा फल भोगने में परतन्त्र सत्ता है। परमात्मा ने सभी जीवों को कर्म करने की स्वतन्त्रता दी है वहीं सब जीव अपने किये हुए कर्मों का फल भोगने में परतन्त्र हैं। इस स्वतन्त्रता का जो मनुष्य व जीवात्मायें दुरुपयोग करती हैं, उनको ईश्वर से अपने पापों व अपराधों का दण्ड अवश्य ही मिलता है। इस जन्म के अधिकांश पाप-पुण्य कर्मों का फल जीवों को परजन्म व बाद के जन्मों में मिलता हुआ प्रतीत होता है। हमारा यह जन्म व इसमें जाति, आयु व भोग हमें हमारे पूर्वजन्मों के कर्मों के आधार पर मिलते हैं। इस जन्म में हमें अपने पूर्वजन्मों के उन कर्मों को पहले भोगना है जो हम पहले कर चुके हैं। इस कारण इस जन्म के अधिकांश कर्मों का फल हमें भावी जन्मों वा पुनर्जन्मों में मिलता है। अत: ईश्वर पर यह आरोप नहीं लगता कि उसने जीव को कर्म करने के साथ ही दण्ड क्यों नहीं दिया। दण्ड अपराध करने के बाद ही दिया जाता है। यदि ऐसा न हो तो जीव को कर्म करने की स्वतन्त्रता पर आंच आती है। ईश्वर सर्वज्ञ है, अत: उसके सभी कार्य नियमों व मर्यादाओं के अन्तर्गत ही होते हैं। वेदों एवं सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों का अध्ययन करने वाले लोग विवेक से युक्त होने के कारण इन बातों पर विश्वास करते हैं। इस कारण वह ईश्वर की व्यवस्था को समझते हैं और उसे स्वीकार भी करते हैं। इन नियमों व सिद्धान्तों का जन-जन में प्रचार होना चाहिये जिससे मनुष्य पाप कर्मों को करते हुए डरे। उसे ज्ञात होना चाहिये कि उसे अगला जन्म उसके इस जन्म के सत्यासत्य वा पाप-पुण्य कर्मों के आधार पर मिलेगा जहाँ उसे अपने पाप कर्मों का फल दु:ख के रूप में अवश्यमेव भोगना होगा। यह भी सत्य सिद्धान्त है कि ईश्वर किसी जीव के किसी पाप कर्म को कदापि क्षमा नहीं करता है। किसी मत व पन्थ के आचार्य व महापुरुष में यह सामर्थ्य नहीं है कि वह अपने व अपने अनुयायियों के किसी एक कर्म का फल भी क्षमा करवा सकें। इस विषय में मत-मतांतरों ने अनेक भ्रान्तियां

फैलाई हुई है। उसके लिये इस विषय के जिज्ञासुओं को वैदिक कर्म फल सिद्धान्तों से संबंधित ग्रन्थों को पढ़ना चाहिये।

हम यह भी अनुभव करते हैं कि पूरा विश्व मत-मतान्तरों में बंटा हुआ है। प्रत्येक मनुष्य किसी एक मत व विचारधारा को मानता है। कुछ मत ऐसे भी हैं जो ईश्वर पर विश्वास नहीं करते परन्तु पाप तो सभी मतों के लोगों द्वारा किये जाते हैं। कोई व्यक्ति व मतानुयायी कम करता है तो कोई अधिक कर सकता है। इसका एक कारण किसी मत द्वारा पाप कर्मों की सूची का न बनाया जाना व उन्हें प्रचारित न किया जाना भी है। वेदों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि मनुष्य को सत्य का ग्रहण एवं असत्य का त्याग करना चाहिये। इसका अर्थ है कि मनुष्य को सत्याचरण ही करना चाहिये असत्याचरण व पाप कर्म नहीं करने चाहियें। पाप कर्म वह होता है जिससे किसी निर्दोश व्यक्ति व व्यक्तियों के समूह को दु:ख व पीड़ा पहुंचती हैं। हमें दूसरों के प्रति वह कर्म कदापि नहीं करने चाहियें जो हम दूसरों से अपने प्रति किया जाना स्वीकार न करते हों। झूठ बोलना, सत्य को छिपाना, चोरी करना, अकारण मनुक्ष्य व किसी भी प्राणी की हिंसा करना वा उन्हें दु:ख देना पाप कर्मों में आता है। मनुष्यता अज्ञानतावश भी बहुत से अनुचित कार्य करता है जो कि अकरणीय होते हैं। अत: पापों से बचना चाहिये जिससे हमारा वर्तमान व भविष्य का जीवन हमारे द्वारा किये जाने वाले व किये गये पाप कर्मों के दु:खरूपी फलों को भोगने से बच सके। यदि हम सत्यार्थप्रकाश, वेद, उपनिषद, दर्शन तथा मनुस्मृति आदि ग्रन्थों का अध्ययन कर लें तो हम एक सच्चे मानव बन सकते हैं और वर्तमान एवं भविष्य के संकटों से बच सकते हैं। पाप के सन्दर्भ में यह विशेष जानने योग्य है कि मांस व मदिरा का सेवन पाप कर्मों में सम्मिलित है। इन कार्यों को किसी भी सभ्य मनुष्य को कदापि नहीं करना चाहिये। इनका सेवन करने से आत्मा में मलिनता आती है।

मनुष्य पाप न करे, इसके लिए उसे धर्म व पाप-पुण्य का ज्ञान होना आवश्यक है। धर्म के ज्ञान के लिये ईश्वर प्रदत्त वेदज्ञान का होना भी आवश्यक है। महाभारत युद्ध से पूर्व तक वेदज्ञान सर्वसाधारण मनुष्यों को सुलभ था। हमारे देश में ऋषियों व वेदों के आचार्य बहुतायत में होते थे। देश में गुरुकुलों का जाल बिछा हुआ था जहाँ सभी लोगों को नि:शुल्क व बिना किसी भेदभाव के वेद एवं इतर विषयों के ग्रन्थों का अध्ययन करने का अवसर मिलता था। महाभारत युद्ध व उसके बाद वेदाध्ययन कम होता गया और कुछ दशकों व शताब्दियों बाद यह अधिकांशत: बाधित हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि वेदों के सत्य अर्थों का सामान्य मनुष्यों व विद्वानों को भी ज्ञान नहीं रहा। इसी कारण से देश व समाज में अज्ञान व अन्धविश्वास उत्पन्न हुए। महर्षि दयानन्द (1825-1883) के वेद प्रचार कार्य को आरम्भ करने के समय तक देश-विदेश में अज्ञान व अंधविश्वास चरम सीमा पर थे। ऋषि दयानन्द ने विद्या का सत्यस्वरूप बताया। उन दिनों लोगों को ईश्वर व आत्मा का सत्य स्वरूप विदित नहीं था। ऋषि दयानन्द ने वेदप्रचार कर सृष्टि में विद्यमान सभी पदार्थों का सत्यस्वरूप प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने समस्त वैदिक विचारों को सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि-भाष्य भूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय तथा ऋग्वेद -यजुर्वेद भाष्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जिससे देश भर के सत्य एवं विद्या प्रेमी लोग लाभान्वित हुए। वेदप्रचार से मनुष्यों को ईश्वर व आत्मा का सत्यस्वरूप ही विदित नहीं हुआ अपितु सृष्टि में कार्यरत जीवों के जन्म व मरण वा आवागमन का आधार कर्म-फल सिद्धान्त का भी ज्ञान हुआ। पाप का कारण अविद्या व अज्ञान होता है। इस अज्ञान व अविद्या को वेद एवं वैदिक साहित्य के प्रचार द्वारा ही दूर किया जा सकता है। ऋषि दयानन्द के समय में देश में अनेक अविद्यायुक्त मत-मतान्तर प्रचलित थे और आज भी हैं। वह मत अपने हिताहित के कारण सत्य को स्वीकार नहीं कर सके जिसका परिणाम है कि अविद्या पूर्ववत् जारी है। इस अविद्या के कारण ही संसार में पाप व दुष्कर्म हो रहे हैं। जब तक मनुष्य वेदज्ञान को प्राप्त कर उससे युक्त होकर दूसरों को भी वेदाचरण की प्रेरणा नहीं देंगे, तब तक अविद्या दूर न होने से पापों का आचरण जारी रहेगा जिससे मनुष्यों का अपना जीवन व परजन्म दु:खों से ग्रस्त रहेंगे और उनके कारण संसार में इतर अशिक्षित भोलेभाले लोग भी दु:खों से ग्रस्त रहेंगे। अत: संसार में

सत्य विद्याओं के ग्रन्थ वेद की शिक्षाओं का प्रचार व प्रसार समय की प्रमुख आवश्यकता है। यही प्रमुख उपाय संसार से दु:ख व अशान्ति को दूर करने का प्रतीत होता है।

मनुष्य को सच्चे धर्म का ज्ञान होना आवश्यक है। सच्चा धर्म वेदों द्वारा प्रवृत्त वैदिक धर्म ही है। वैदिक धर्म का पालन करने से मनुष्य अधर्म व पाप से बचता है। उसका वर्तमान एवं भविष्य का जीवन दु:खों से प्राय: मुक्त हो जाता है। पापों से रहित इस वैदिक व्यवस्था को प्रवृत्त व क्रियान्वित करना कठिन व असम्भव सा कार्य है। ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन काल में वेदों के ज्ञान को देश-देशान्तर में प्रवृत्त करने का भरसक प्रयास किया था। उन्हें मत-मतान्तरों के विद्वानों का सहयोग नहीं मिला। उनके बाद उनके अनुयायियों ने भी इस कार्य को जारी रखा। उनके अनुयायियों की क्षमता सीमित होने व उनमें भी अन्य मनुष्यों के समान कुछ न्यूनतायें होने के कारण वह अपने संगठन को भी बलशाली नहीं रख सकें। वेदों का प्रचार कार्य धीमी गति से चल रहा है। आर्यसमाज के पास विद्वानों की कमी नहीं है। परन्तु संगठन की दुर्बलताओं के कारण देश व समाज से अविद्या दूर होने के आशानुकूल परिणाम समाने नहीं आ रहे। ईश्वर कृपा करें कि आर्यसमाज के संगठन को क्षीण करने वाले सभी दोष व प्रवृत्तियां दूर हो जायें। आर्यसमाज विश्व में जोर शोर से वेदों का प्रचार करे। संसार के लोग आर्यसमाज की सदाशयता को समझें और उससे सहयोग करें। मत-मतान्तर भी अपनी अविद्या को दूर करने के लिये तत्पर हों और आर्यसमाज के साथ मिलकर संसार से पापों व दुष्कर्मों को दूर कर सर्वत्र सुख व शान्ति का प्रसार करने के लिये मिलकर काम करें। यही उपाय संसार व समाज की उन्नति का प्रतीत होता है। हमारे प्राचीन सभी ऋषि-मुनि, विद्वान व आचार्य यही कार्य करते थे। ऋषि दयानन्द ने भी इस कार्य को आदर्श रूप में किया। उनके कार्य की सफलता अभी अपने लक्ष्य से बहुत दूर है। ईश्वर सभी मनुष्यों को सत्य के ग्रहण और असत्य को छोड़ने की प्रेरणा करें। सभी वेदानुगामी होकर अपनी अविद्या को दूर कर संसार को श्रेष्ठ बनाने के कार्य में अपना-अपना योगदान करें। ओ३म् शम्।

CHETAN PRAKASH
9999822020

RAMA ENTERPRISES

MFRS. & SUPPLIERS OF OIL SEALS
& RUBBER PARTS

M-11 Gali No. 1, Industrial Area, Anand Parbat,
New Rohtak Road, New Delhi-110005
E-mail : ramaoilseals@gmail.com

ECHOES OF SUSTAINABLE DEVELOPMENT: PARALLELS BETWEEN SUSTAINABLE DEVELOPMENT GOALS (SDGS) AND PRINCIPLES OF VEDIC SOCIETY

DR. DIVYA RANA, Ph.D. (Ancient History)
Ex-Faculty, Bharti College NCWEB Centre, University of Delhi

The 2030 Agenda for Sustainable Development, adopted by all United Nations Member States in 2015, provides a shared blueprint for peace and prosperity for people and the planet, now and into the future. At its heart are the 17 Sustainable Development Goals (SDGs), which are an urgent call for action by all countries - developed and developing - in a global partnership. The SDGs, offer a comprehensive roadmap for global development that aims to balance social, economic, and environmental dimensions. Though modern in form, the ideas that shape the SDGs can be traced back to the wisdom of ancient civilizations. One such civilization, the Vedic society of ancient India, laid out principles and practices that resonate with the core goals of sustainable development. This article explores the remarkable parallels between the SDGs and the ancient Vedic worldview, revealing how Vedic philosophy, social structures, and environmental practices anticipated many of the concerns addressed by the SDGs.

Environmental Sustainability

Environmental sustainability is central to both the SDGs 13 (Climate Action) and SDG 15 (Life on Land) and the Vedic worldview. SDG 13 and SDG 15 emphasize the protection of ecosystems, combating climate change, and promoting biodiversity. Similarly, the Vedic tradition placed nature at the core of human existence, with a deep reverence for the environment and the belief that humans are not separate from nature but an integral part of it.

The Rig Veda and the Atharva Veda, are filled with hymns celebrating the elements of nature– earth, water, fire, air, and space. Deities representing natural forces, such as Agni (fire), Indra (rain), and Vayu (wind), were worshipped and revered. Nature was considered sacred, and maintaining harmony with it was seen as essential for both individual well-being and societal prosperity. This parallels modern environmental ethics, which seek to curb the harmful impact of human activities on nature. In ancient Vedic society, the concept of sacred groves– protected areas of forests dedicated to deities– served as early models of biodiversity conservation. These groves were off-limits for deforestation and exploitation, ensuring the protection of flora and fauna. This aligns with modern biodiversity initiatives aimed at preserving natural habitats, a key component of SDG 15.

Furthermore, the Vedic practice of Yagya (sacrificial rituals) often invoked the forces of nature for the common good, symbolizing a respectful exchange between humans and the environment. In this way, Vedic rituals emphasized environmental stewardship, much like the modern

emphasis on sustainable resource management and climate resilience.

Health and Well-Being

Health and well-being are central to the SDGs, especially SDG 3 (Good Health and Well-Being), which seeks to ensure healthy lives and promote well being for all ages. In Vedic society, the pursuit of good health was seen as integral to spiritual and material success. This holistic approach to health can be seen in the ancient Indian medical system of Ayurveda, which emphasizes the balance between the body, mind, and spirit.

Ayurveda, often referred to as the "science of life," has its roots in the Vedic tradition and represents one of the earliest comprehensive systems of health care. It focuses on maintaining balance among the three doshas–Vata (air), Pitta (fire), and Kapha (earth)—which govern the body's physiological functions. Ayurvedic medicine emphasizes preventive care, healthy living, and natural remedies, which aligns with SDG 3's focus on promoting mental and physical well-being and ensuring access to health care.

Vedic texts also reflect an understanding of hygiene and public health. For example, the Manusmriti emphasizes cleanliness, personal hygiene, and sanitation, which is echoed in SDG 6 (Clean Water and Sanitation). Rituals involving bathing, cleanliness, and purification were not just spiritual but also practical measures to ensure health in community living.

Social Equality

Social justice and equality are core principles of sustainable development, as reflected in SDG 5 (Gender Equality) and SDG 10 (Reduced Inequalities). While the rigid caste system later became associated with inequality in Indian society, the early Vedic period was marked by a more flexible social structure, and Vedic texts contain several progressive ideas about gender roles and social equality.

The Vedic texts reveal that women played significant roles in religious, intellectual, and social spheres during the early Vedic period. Notable female sages like Gargi and Maitreyi engaged in philosophical debates with their male counterparts. This indicates that education and intellectual pursuits were accessible to women, which resonates with SDG 5's goal of achieving gender equality and empowering women and girls.

Marriage in Vedic society was also considered a partnership between equals. The Saptapadi or "seven steps" in the Vedic marriage ceremony emphasized mutual respect, shared responsibility, and cooperation, principles that align with modern views on gender equality and shared decision-making within families. The Vedic concept of varna (social classification) was originally based on the idea of division of labor and individual aptitude rather than rigid hierarchical structures. The four varnas–Brahmins, Kshatriyas, Vaishyas, and Shudras were meant to reflect functional roles in society rather than inherent superiority or inferiority. This system, at its core, was more fluid and merit-based, though it later became stratified and rigid over time. The original concept of varna intended to provide social stability while allowing for a degree of social mobility, resonating with SDG 10's call for reducing inequalities within and among nations. However, the later distortion of this system into a rigid caste hierarchy led to social inequality,

which remains a challenge today.

Economic and Resource Sustainability

Vedic society's economic practices were closely tied to agricultural sustainability and resource conservation, reflecting modern concerns about SDG12 (Respon-sible Consumption and Produc-tion) and SDG 2(Zero Hunger). The Vedic economy was primarily agrarian, with a strong focus on sustainable agriculture. The Atharva Veda contains hymns that praise the earth for its fertility and emphasize responsible stewardship of land and water resources. Agricultural practices were based on natural cycles, and the importance of protecting the environment for continued agricultural success was deeply embedded in Vedic thought. Farmers were encouraged to treat the land with respect and to avoid practices that would lead to degradation. This mirrors modern calls for sustainable agricultural practices to ensure food security, as outlined in SDG 2 (Zero Hunger).

The ritual of yagya, which involved offerings to deities, had an ecological dimension. The offerings were seen as a symbolic return of resources taken from nature, reflecting an understanding of the need to give back to the environment. This practice aligns with the principle of circular economy promoted by SDG 12, which encourages responsible consum-ption and the reuse of resources to minimize waste.

Community and Cooperation

Vedic society placed a strong emphasis on community welfare and cooperation, values that resonate with SDG 11's goal of making cities and communities inclusive, safe, resilient, and sustainable. The concept of the welfare of the entire world, was a guiding principle in Vedic society. It was believed that individual actions should contribute to the greater good of society, and that harmony within communities was essential for overall prosperity. This collective responsibility reflects modern ideas about social cohesion, sustainable urban planning, and building resilient communities.

Vedic society was largely village-based, with local governance structures ensuring that resources were shared and managed collectively. This village-centric approach to governance promoted self-sufficiency and communal responsibility, which aligns with modern movements toward decentralized governance and sustainable local economies as part of SDG 11.

Conclusion

The principles underlying the Sustainable Development Goals (SDGs) echo the values and practices found in the ancient Vedic society. From environmental stewardship and social equality to holistic health and responsible resource management, Vedic teachings offer timeless wisdom that aligns with the goals of modern sustainability. While the SDGs provide a global framework for addressing today's challenges, the parallels with Vedic principles highlight that the pursuit of a balanced, harmonious, and sustainable way of life has deep roots in human history. By recognizing these parallels, we can draw upon the wisdom of the past to guide our efforts toward a sustainable future. The timeless relevance of Vedic principles in achieving the SDGs reminds us that sustainable development is not just a contemporary goal but a pursuit that has shaped human civilization for millennia.

"अथर्ववेद का भूमिसूक्त" एक विवेचनात्मक अध्ययन

(राष्ट्रियता के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ. धर्मेन्द्र शास्त्री - प्रोफेसर (संस्कृत) खालसा महा., दिल्ली वि.वि., पूर्व सचिव, दिल्ली संस्कृत अकादमी, दिल्ली सरकार

चारों वेदों में अथर्ववेद के बारहवें काण्ड का पहला सूक्त भूमिसूक्त कहलाता है। इस सूक्त का देवता - Subject matter 'भूमि' है। देवता का अभिप्राय प्रतिपाद्य विषय से होता है। सूक्त का देवता, प्रतिपाद्यविषय भूमि-मातृभूमि होने के कारण इस सूक्त का नाम 'भूमिसूक्त' पड़ गया है। 'ऋषि' अथर्वा है। सम्पूर्ण सूक्त में 63 मन्त्र हैं। इस सूक्त पर कोई भी प्राचीनतम भाष्य,उपलब्ध नहीं होता है। सायणाचार्य का अथर्वभाष्य उपलब्ध है, परन्तु वह सम्पूर्ण नहीं मिलता है। इस सूक्त में मातृभूमि की महिमा, इसके वन- पर्वत, नदी-समुद्र इत्यादि का विस्तार से वर्णन उपलब्ध होता है। राष्ट्र के निवासियों की सुख-समृद्धि, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक चित्रण इत्यादि विभिन्न पहलुओं पर विभिन्न रूपों का चित्रण मन्त्रों के कवितामय संगीत में करता है। वेद का यह भूमिसूक्त किसी एक देश-विशेष का राष्ट्रिय गीत न होकर मानवमात्र का राष्ट्रिय गीत है। वेद की आन्तरिक प्रेरणा यही है कि धरती के सब मनुष्यों को सम्पूर्ण पृथिवी को ही अपनी मातृभूमि और उसके सब निवासियों को अपना भाई समझना चाहिए। यह सूक्त किसी देश-विशेष का गीत न बनकर सम्पूर्ण मानवजाति का संगीत बनने में सामर्थ्य रखता है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति का कारण उसके निवासी होते हैं। उनका आचरण, व्यवहार, शिक्षा, दीक्षा, संस्कृति, सभ्यता इत्यादि सभी गुणों का उनमें समावेश होना चाहिए। मातृभूमि के निवासियों में कौन-कौन से ऐसे गुण होने चाहिए, जिनसे राष्ट्र सर्वांगीण विकास कर सकता है। पहले ही मन्त्र में विस्तार के साथ इन गुणों की चर्चा पढ़ने को मिलती है-

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥[1]

इतने सरल सहज सुन्दर शब्दों में राष्ट्रनिवासियों के गुणों की चर्चा मिलती है। सभी राष्ट्र के निवासियों को सत्यप्रिय होना चाहिए। जीवन की प्रत्येक विधा में हम सत्य का पालन करने वाले बनें। मन-वचन-कर्म से एकनिष्ठ होकर सत्य का पालन करना जीवन का अनिवार्य अङ्ग बनाये। अगला विशेषण ऋत ज्ञान की सत्यता को द्योतित करता है। विश्व में चल रहे सत्यनियमों का तदनुसार सत्य-आचरण करना हमारे जीवन का ध्येय बनना चाहिए। राष्ट्र के लोगों में शूरता, वीरता, तेजस्विता, वर्चस्विता होनी चाहिए, वे दीन-हीन बनकर न रहें। अदीन बनकर रहे। 'उग्रं' विशेषण इसी भावना को द्योतित करता है। प्रत्येक निवासी का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह अपने कर्तव्य कर्म में कभी आलसी, प्रमादी बनकर न रहें।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः - अपने कर्तव्य कर्म को श्रद्धा मन-वचन-कर्म से एकजुट होकर सभी कार्यों के दृढ़-सङ्कल्पपूर्वक हाथ में लेने को ही मंत्रस्थ 'दीक्षा' शब्द प्रेरित करता है। विघ्न-बाधाओं से विचलित न होकर सङ्कल्पित कर्मों को पूर्ण करने का नाम ही 'दीक्षा' है। राष्ट्र के नागरिकों में सरलता, सादगी, जीवन में कष्ट-सहिष्णुता की भावना, अनेक प्रकार के सुख-दुःखों को समानता से सहन करने का नाम ही 'तपः' है। आस्तिकता की भावना शिक्षा-दीक्षा, अनेक प्रकार की विद्याओं से सम्पन्न राष्ट्र निवासी होने चाहिए। इसी का नाम 'ब्रह्म' है। स्वार्थ की भावना प्रबल न होकर राष्ट्र के योगक्षेम की, कल्याण की भावना का विचार सबके मनों में होना चाहिए। परोपकार की भावना का नाम ही 'यज्ञ' है।

इन उपरोक्त सातों गुणों को जिस राष्ट्र के निवासी धारण करेंगे, वह राष्ट्र महाशक्ति कहलायेगा। उसकी सदा उन्नति होती रहेगी। वह सदा ऊँचा ही ऊँचा उठता चला जायेगा।

ये राष्ट्र के निवासी साधारणजन नहीं हैं, वे मानव हैं, मननशील हैं। अच्छाई एवं बुराइयों की पहचान करने वाले हैं। सबको उन्नति के शिखर पर चढ़ने के बारे में सोचना चाहिए। राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति शारीरिक-सामाजिक-आर्थिक सब प्रकार की उन्नति करता रहें। उन्नति के चरमशिखर पर चढ़ने की सबमें ललक होनी चाहिए, भावना होनी चाहिए। उसके लिए सबको प्रयत्नशील होना चाहिए। इस मातृभूमि की कोख से अनेक प्रकार के अनाज, जड़ी-बूटियाँ, औषधियाँ उत्पन्न होती हैं। इनका सेवन कर प्रत्येक राष्ट्र निवासी बलशाली बनें, नीरोग बनें। हे मातृभूमि! तू इतनी ऊर्वरा है कि बिना खेती के भी तेरे पर्वतों और जंगलों में अनेक प्रकार की ओषधियाँ वनस्पतियाँ उत्पन्न होती है। तू सदैव अपने निवासी मानवों का कल्याण करती रहती है।

तभी तो ऋषि उद्घोषणापूर्वक कह उठता है-

असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।

नानावीयां ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः॥[2]

राष्ट्र के जलाशय, झीलें, कुएँ, सदा पानी से पूरित होने चाहिए, जिससे कभी अकाल, दुर्भिक्ष, अन्न की समस्या न हो। समुद्र की लहरें जिसके चरणों को सदैव चूमती रहें। हे पृथिवी मातः तू अनेक प्रकार के मङ्गलों की धारा हम सबके लिए बहाती रहे। राष्ट्र के निवासियों को अपने उद्योग धन्धों, व्यापार कम्पनी आदि मिलकर करने चाहिए। सभी निवासी प्राणशाली बलवान्, स्वस्थ, शक्तिसम्पन्न क्रियाशील उद्यमी हों। अस्वस्थ, निर्बल, निस्तेज, आलसी लोगों की राष्ट्र किसी प्रकार की उन्नति नहीं कर सकता। सभी मानवों को परस्पर मिलकर रहना चाहिए। खेती, उद्योग, धन्धे, व्यापार सभी सहकार पद्धति से करना चाहिए।[3]

सबके लिए उन्नति के मार्ग खुले होने चाहिए। परस्पर भ्रातृभाव, भाईचारे की भावना, सहृदयता, सामञ्जस्य, ईर्ष्या-द्वेष की भावना कदापि किसी के मन में न हो। अन्न की समस्या न हो, राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को खाने के लिए पर्याप्त अन्न, धन-धान्य तथा जीवनोपयोगी सभी पदार्थ पर्याप्त मात्रा में मिलने चाहिए।[4]

हर राष्ट्र में दैवी-आसुरी गुणों से युक्त जन होते हैं। साधु, सज्जन, निष्कपट, सरल प्रकृति के जनों की रक्षा होनी चाहिए, जो अत्याचारी, छल, कपट, हिंसा, दुराचार, दुष्टाचार आदि आसुरी भावनाओं से युक्त जनों का सदा पराभव, तिरस्कार अपमान होना चाहिए। राष्ट्र के दुष्ट पुरुषों का सदा दमन करते रहना चाहिए, क्योंकि कहा गया है- **"दण्डः शास्ति प्रजा सर्वाः"** ऐसे लोगों को उचित मात्रा में **'यथापराधदण्डानाम्'** अपराध के अनुकूल सदा दण्डित किया जाना चाहिए। राष्ट्र तभी उन्नति कर सकेगा। राष्ट्र के निवासियों में ज्ञान की कमी नहीं होनी चाहिए। हे मातृभूमि! तू सबकी प्रतिष्ठा है, गायें, अश्व (घोड़े), भाँति-भाँति के पक्षी, जीव-जन्तु, जानवर सभी तेरे रहने का स्थान है। तूने सबको अपनी गोदी में स्थान दिया हुआ है। यह मातृभूमि प्राणीमात्र का भरण-पोषण करती है। राष्ट्र के सभी निवासी नर-नारी, सब पशु-पक्षी, कीट, पतङ्ग तथा सब वनस्पति तुझ पर ही तो टिके हुए हैं। वह वसुधानी है, सब प्रकार का धन-ऐश्वर्य इसके भीतर विद्यमान है। भूमि सबकी प्रतिष्ठा है। सबका आधार है, हम सबको आश्रय देती है। मातृभूमि की कुक्षि में ही तो सोना, चाँदी, लोहा, ताम्बा, हीरे न जाने कितने बहुमूल्य पदार्थ इसके गर्भ में भरे हुए हैं। इस प्रकार वेद ने मातृभूमि की महिमा का गान करके एक आदर्श राज्य का चित्र खींच दिया है और यह कहा कि यदि हम प्रतिष्ठा चाहते हैं तो हमारी कोई मातृभूमि अवश्य रहनी चाहिए।[6]

प्रत्येक राष्ट्र निवासी का यह कर्तव्य है कि वह अपनी मातृभूमि के प्रति वफादार बनकर रहे।

-शेष भाग अगले अंक में.....

महर्षि दयानंद सरस्वती द्वारा विदेशों में परिवर्तन क्रांति

किरण वर्मा

19 वीं सदी में भारत पर अंग्रेजों की हुकूमत थी। केवल भारत ही नहीं विश्व के अनेक देश जैसे फिजी, मॉरीशस, दक्षिण अफ्रीका, केन्या व ग्याना आदि देशों में भी अंग्रेजों का कब्जा था अब इन देशों में व्यापारिक उपयोग के लिए कुछ लोग चाहिए थे। भारत में इनकी सरकार थी तो भारत से हमारे परिश्रमी कृषकों को इन देशों में कुछ सालों का एग्रीमेंट करके समुद्री जहाजों से खेती करने के लिए ले जाया गया।

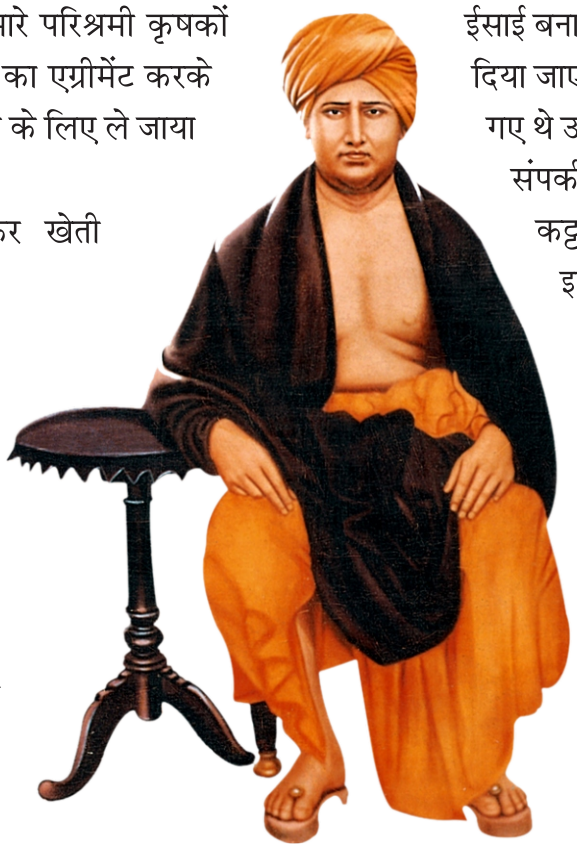

कृषकों ने वहाँ जाकर खेती आरम्भ की। मेहनत से खेती के साथ-साथ अपने घर भी वहीं बना लिए। एक तरह से उनके परिवार वहीं बस गए।

अब उनके सामने कई समस्याएँ आनी प्रारम्भ हो गई। पहली जो लोग समुद्री रास्ते से उन देशों में गए वह अपने परिवारों से दूर होते गए। हिन्दुओं के धार्मिक अंधविश्वास के अनुसार समुद्र को पार करके जाना धर्म भ्रष्ट होना माना जाता था। पोंगा पंडितों ने घोषणा कर दी थी कि जो समुद्र को पार करके जाएगा उन्हें उनके धर्म से बाहर निकाल दिया जाएगा। उनसे सब संबंध तोड़ दिए जाएंगे। वे लोग अब अपने हिन्दू धर्म से बाहर थे।

अब उन भारतीयों के वहाँ बच्चे हुए तो उन्हें पढ़ाने के लिए स्कूल की जरुरत महसूस हुई। उनके बच्चों के लिए अंग्रेज सरकार ने स्कूल खोल दिए। भारतीयों के पास कोई विकल्प नहीं था। अंग्रेज सरकार की नीति ही यही थी कि यहाँ भारतीयों की अगली पीढ़ी को ईसाई बनाया जाए। उन्हें अंग्रेज भक्त बना दिया जाए। भारत से जो मुस्लिम किसान गए थे उनका अपने भारतीय परिवारों से संपर्क बना रहा। वे अपने धर्म के प्रति कट्टर थे। मुस्लिम धर्म प्रचारक इसको धर्म के विरूद्ध नहीं समझते थे। अब प्रचारकों ने उन देशों में जाना शुरू कर दिया जहाँ उनके कृषक थे। हिन्दू भी उन्हें भारत से आया हुआ धर्म प्रचारक समझकर उनसे ज्ञान लेने लग गए। अब हिंदू किसानों के पास ज्ञान के दो ही स्त्रोत थे - भारत से आने वाले मुस्लिम प्रचारक या अंग्रेजी स्कूल और चर्च को चलाने वाले ईसाई, पोप और पादरी। अब धीरे-धीरे हिंदू किसान ईसाई और मुस्लिम धर्म को ग्रहण करने लगे। अपने धार्मिक रूप से कटे रहने के कारण हिंदू अपने त्यौहार होली, दिवाली की जगह ताजियों के जलूस निकालने लगे।

आर्यसमाज की पहली पीढ़ी के प्रचारकों ने यह सब देखा तो भाई परमानन्द जैसे प्रचारकों ने इन स्थितियों को गहराई से समझा। स्वामी शंकरानन्द अफ्रीका पहुँचे। वहाँ अप्रैल 1910 को रामनवमी की शोभा यात्रा निकाली। अब धीरे-धीरे उनके निरन्तर प्रयत्नों से हिन्दू त्यौहार स्थापित होने लगे।

वहाँ जो बच्चे अनाथ हो गए थे उन्हें ईसाई अनाथालयों में भर्ती कर दिया जाता था ताकि वह बच्चे ईसाई स्कूल में पढ़कर ईसाई बन सकें।

इधर भारत में आर्य समाज स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के परिश्रम से तेजी से बढ़ रहा था। आर्य समाज के नेता और विद्वानों को प्रचारक के रूप इन देशों में भेजा गया। अब सबसे बड़ी गौरवपूर्ण जागृति, हिन्दू जो ईसाई बन गए थे, उन्हें वापिस हिन्दू धर्म में आने का मार्ग खुल गया।

भारत की अंग्रेज फौज में अनेक सिपाही आर्य समाजी भी थे। वे जब भी अंग्रेजी सेना के साथ इन देशों में जाते थे तो अपने साथ सत्यार्थ प्रकाश ले जाते थे और सत्यार्थ प्रकाश की एक प्रति वहीं छोड़कर आते थे। अब मॉरिशस और फिजी आदि देशों में आर्य समाज और स्वामी दयानन्द जी के संदेश पहुँचने लगे। जो थोड़े पढ़े लिखे भारतीय थे वह स्वयं पढ़कर रात को सबको इकट्ठा करके सुनाया करते थे। धीरे-धीरे उनमें जागृति आने लगी।

हिंदी भाषा जो लुप्त हो गई थी। वहाँ के बच्चे हिंदी पढ़ने की इच्छा से भारत आने लगे। भारत में गुरुकुल कांगड़ी जैसी संस्था स्थापित हो चुकी थी।

- हिन्दू परिवारों में अपने धर्म को लेकर एक गौरवपूर्ण जागृति आ गई।
- अब इन देशों में आर्य समाज ने स्कूलों को खोलना आरम्भ किया।
- हिन्दू धर्म के महत्त्व को समझकर त्यौहारों को मनाना प्रारम्भ कर दिया।

महर्षि दयानंद सरस्वती जी की प्रेरणा और निरंतर प्रयास के कारण ही यह परिवर्तन क्रांति हो पाई। इस क्रांति के सूत्रधार थे महर्षि दयानन्द सरस्वती।

धन्य दयानन्द।

भूमिका
महर्षि दयानन्द सरस्वती

मनुष्य का आत्मा सत्याऽसत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है। परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रक्खी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है, किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्याऽसत्य को मनुष्य लोग जान कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के विना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं, वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सब के अनुकूल सब में सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक दूसरे से विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्त्तें वर्त्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़ कर अनेकविध दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है। इस हानि ने, जो कि स्वार्थी मनुष्यों को प्रिय है, सब मनुष्यों को दुःखसागर में डुबा दिया है।

साभार : सत्यार्थ प्रकाश

पर्यावरण और प्राचीन भारतीय संकल्पना

अमला ठुकराल – सेवानिवृत्त संस्कृत विभागाध्यक्षा
दिल्ली पब्लिक स्कूल, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

अर्थात् प्रकृति के विविध अवयवों के मेल से बना है अखण्ड ब्रह्माण्ड। इन विविध अवयवों में से यदि किसी एक को भी क्षति पहुंचाई गई तो समस्त सृष्टि का नैसर्गिक चक्र खण्डित हो जाएगा और उसके परिणाम स्वरूप पर्यावरण अवक्रमण का वर्तमान संकट और अधिक गंभीर होगा। किसी भी देश की समृद्धि का आधार वहाँ का संतुलित पर्यावरण होता है, जिसमें मानवीय गतिविधियों और प्राकृतिक परिस्थितियों के बीच समन्वय होता है। मानव जो संपूर्ण गतिविधियों का केन्द्र है, पर्यावरण के सर्वाङ्गीण क्षरण से सर्वाधिक ग्रस्त है।

भारत में पर्यावरण के प्रति सम्मान और संरक्षण की महती परंपराएँ रही हैं। संस्कृत वाङ्मय में वैदिक साहित्य से लेकर लौकिक साहित्य और उसके (पर्यावरण) महत्त्व के अध्ययन के लिए प्राचीन संस्कृत वाङ्मय को जानना अत्यंत आवश्यक है।

पर्यावरण से क्या तात्पर्य है, सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है। व्याकरण की दृष्टि से परि+आङ् उपसर्गपूर्वक वरणार्थक √वृङ् √वृवा धातु से ल्युट् प्रत्यय करने पर 'पर्यावरण' इस शब्द की निष्पत्ति होती है। जिसके द्वारा हम चारों ओर से आवृत हैं, वह पर्यावरण है। जिस प्रकार अजन्मा शिशु माता के गर्भ में सुरक्षित रहता है, उसी प्रकार मनुष्य पर्यावरण की कोख में सुरक्षित रहता है। वायु, जल, वृक्ष, वनस्पतियाँ, भूमि, वन, वन्य जीव, पक्षी आदि सभी पर्यावरण के प्रमुख अंग हैं। पर्यावरण का प्रभाव और बुरा प्रभाव सभी मानवों के शारीरिक-मानसिक बौद्धिक आध्यात्मिक तत्त्वों के चिन्तन पर दिखाई देता है। इसी कारण से ही हमारे सभी वेदों में, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि ग्रंथों में, वेदाङ्गों में, पुराणों में, लौकिक संस्कृत वाङ्मयों में पर्यावरण संबंधी गहन चिन्तन, विवेचन बहुत अधिक मात्रा में मिलता है। ऋग्वेद में वायु के सम्बन्ध में कहा गया है-हमें स्वस्थ करने वाली हवाएँ बहें, वे हमारी आयु को बढ़ाएं।

वात आ वातु भेषजं, प्रण आयूंषि तारिषत् (ऋक् 10/186)

यजुर्वेद में भी यही कामना की गई है –

ओ३म शं नो वातः पवता (यजुर्वेद 36/10)

शुद्ध वायु और स्वच्छ जल के सेवन से प्राणी स्वस्थ और शक्ति सम्पन्न होते हैं। वायु और जल पर्यावरण के ही प्रमुख अंग हैं, यह हम सभी जानते हैं। इसलिए पर्यावरण को आयु और शक्ति प्रदान करने वाला कहा गया है।

जल ही समस्त प्राणियों के जीवन का आधार है। अतः हमें नदियों, कूपों, तालाबों या अन्य जलाशयों के जलों की सदा रक्षा करनी चाहिए, उन्हें दूषित होने से बचाना चाहिए। यजुर्वेद में कहा गया है-

माऽपो औषधीहिंसीः (यजु. 6/22)

जल और औषधियों का विनाश मत करो।

यजुर्वेद में ही एक अन्य मंत्र में कामना की गई है –

'ओ३म् शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।'

अर्थात् उत्तम पेय जनों की प्राप्ति हो।

अथर्ववेद में स्पष्ट निर्देश दिया गया है- **'मा आपः हिंसीः'**

अर्थात् जलों को प्रदूषित मत करो।

वनस्पति अर्थात् पेड़-पौधों तथा वनसम्पदा की सुरक्षा हेतु ऋग्वेद में कहा गया है- **'वनस्पति वन आस्थापयध्वम्।** (ऋक् 10/101/11) अर्थात् वन में

वनस्पतियों की रक्षा करो। पर्यावरण के प्रमुख अंग वृक्षों के महत्त्व से कोई अनभिज्ञ नहीं है। हमारी संस्कृति में वृक्ष वन्दनीय हैं, उन्हें सत्पुरुषों की भाँति माना गया है-

अन्येषां छायां कुर्वन्ति, स्वयं तिष्ठन्ति चातपे।
फलान्यपि परार्थाय, वृक्षाः सत्पुरुषा इव॥

अर्थात् स्वयं धूप में खड़े रहकर भी अन्य प्राणियों पर छाया करते हैं, फल आदि भी परोपकार के लिए वे देते हैं, वृक्ष सज्जनों की भाँति होते हैं।

वृक्षों के सभी अंग उपयोगी होते हैं-फल, फूल, पत्ते, लकड़ी, तने, भस्म, त्वचा, गोंद, छाल इत्यादि से वृक्ष अपने चाहने वालों को निराश नहीं करता। इसलिए वृक्षों को काटना अथवा उखाड़ना वर्जित है। मत्स्यपुराण में कहा गया है -

दशकूपसमा वापी दशवापीसमो ह्रदः।
दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः॥

अर्थात् दस कुओं के बराबर एक वापी अर्थात् बावड़ी होती है, दस वापियों के समान एक तालाब, दस तालाबों के समान एक पुत्र तथा दस पुत्रों के समान एक वृक्ष होता है।

परन्तु आधुनिक काल में सम्पूर्ण विश्व भौतिकतावादी तथा उपभोक्तावादी हो गया है। वे लोग स्वार्थपूर्ति हेतु भौतिक सुख सुविधा व समृद्धि के लिए प्रकृति का निर्दयता से दोहन कर रहे हैं। न केवल वन नष्ट हो गए हैं, पर्वत नग्न हो गए हैं, जलों के स्रोत दूषित हो गए हैं, वायु विषाक्त हो गई है अपितु धरती भी बहुत अधिक भ्रष्ट हो गई है। ध्वनिप्रदूषण का तो कहना ही क्या? इस प्रकार भौतिक वातावरण तो प्रदूषित हुआ ही है, सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण भी दूषित होने से बचा नहीं है। वास्तव में मानव जिस शाखा पर बैठा है, उसी को निष्ठुरता से काट रहा है। पर्यावरण की सुरक्षा का प्रश्न आज विचारकों के लिए चिन्ता का विषय है। आज आवश्यकता है उन परम्पराओं को पुनर्जीवित करने की, जो कालान्तर में निष्प्राण हो चुकी हैं। प्राचीन विज्ञानवेत्ता ऋषियों मुनियों ने जिस यज्ञ परंपरा का चलन वेदों में किया था, जिसे स्वामी दयानंद ने तथा आर्यसमाज ने पुनः प्रचलित किया,

आवश्यकता है उस यज्ञ प्रणाली के महत्त्व को पहचानने व इससे लाभ उठाने की। वर्तमान समय में वायु- प्रदूषण में उलझे हुए विश्व की रक्षा करने का यह यज्ञ निरापद अमोघ उपाय है क्योंकि सुगन्धित, मिष्ट, पुष्ट तथा रोगनाशक सामग्री, गुग्गुल, शुद्धघृत जब यज्ञ द्वारा वायु में मिलता है तो वह न केवल अनेक रोगों को विनष्ट कर देता है अपितु वातावरण को शुद्ध व सुगन्धित कर देता है। वनस्पतियों को यज्ञाग्नि में जलाने पर वे पदार्थ सूक्ष्म गैस रूप में बदलकर वाष्पीय दोष दूर कर देते हैं। भोपाल के गैस काण्ड के विषय में तो सब जानते ही हैं। जिन्होंने यज्ञ कार्य किया वे गैस के दुष्प्रभावों से बचने में समर्थ रहे। जर्मनी की प्रयोगशाला में यज्ञ पर अनुसंधान हुआ। उसके परिणाम थे-वायु का शुद्धिकरण और उर्वरकता की दृष्टि से यज्ञ वायुमण्डलीय और पर्यावरणीय स्वास्थ्य दोनों को समृद्ध एवं पुष्ट करता है। यहाँ तक कि यज्ञ की राख भी मनुष्यों, पशुओं एवं वृक्षों पर लाभकारी सिद्ध हुई है। अथर्ववेद में भी आरोग्य और दीर्घायु होने के लिए संदेश देते हुए कहा गया है-**'मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय।'** (अथर्ववेद 3/11/1) आज आवश्यकता है मनुष्य को प्रकृति व पर्यावरण के प्रति संवेदनशील होने की। अतः पर्यावरण संरक्षण सभी भारतीयों का राष्ट्रीय कर्त्तव्य है।

अंत में ईश्वर से यही प्रार्थना है कि पर्यावरण प्रदुषण के विनाश के लिए पर्यावरणीय समस्त तत्त्वों को सर्वथा अनुकूल बनाने के लिए - **"ओ३म् द्यौः शान्तिः, अन्तरिक्षं शान्तिः, पृथिवी शान्तिः, आपः शान्तिः, ओषधयः शान्तिः, वनस्पतयः शान्तिः, विश्वेदेवाः शान्तिः, सर्वं शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः, सा मा शान्तिरेधि।"**

धर्मो रक्षति रक्षितः

रचना आहूजा-प्रधाना
प्रान्तीय आर्य महिला सभा-दिल्ली राज्य

'धर्म' सस्कृत के 'धृ' धातु से बना है जिसका मतलब होता है - धारण करने योग्य अर्थात् जिसे सबको धारण करना चाहिए - वह धर्म है। धर्म का अर्थ इतना अधिक व्यापक है कि इसे चन्द शब्दों में पिरो पाना असंम्भव न सही तो कठिन तो अवश्य है ही। यह पूरे ब्रह्माण्ड में - पृथ्वी लोक से लेकर द्यौलोक तक फैला हुआ है। चाहे जड़ पदार्थ हो या चेतन - प्रत्येक प्रदार्थ अपने धर्म का पालन बखूबी कर रहा है जिसके फल स्वरूप सृष्टि टिकी हुई है। धर्म एक ऐसी व्यापक गतिविधि है जिससे 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना को अत्यधिक बल मिलता है और विश्व बन्धुत्व की भावना और भी प्रगाढ़ होती है। वास्तव में तो- धर्म न मंदिर है न मस्जिद न गुरुद्वारा, न गिरजा घर। धर्म न गीता है न कुरान, न ग्रंथ साहब न बाइबल। धर्म न धूप है न अगरबत्ती धर्म न हरिद्वार है न मक्का, न रोम न अमृतसर। धर्म न सुन्नत है न जनेऊ। धर्म न दण्डवत है न हज, न गंगा में डुबकी - कहते हैं धर्म सत्य है, धर्म ईमान है, धर्म प्रेम है, धर्म बंधुत्व है।

धर्म का अर्थ मंदिर या मस्जिद से नहीं है- धर्म का अर्थ कर्तव्य से है। यदि हर व्यक्ति अपने धर्म का पालन नहीं करेगा तो पूरे समाज का अस्तित्व संकट में पड़ जायेगा।

बाप का बेटे के साथ क्या धर्म है - बेटे का बाप के साथ क्या धर्म है। माँ का बेटे के साथ क्या धर्म है, बेटे का माँ के साथ क्या धर्म है। पति का पत्नी के साथ क्या धर्म है-पत्नी का पति के साथ क्या धर्म है। भाई का भाई से - भाई का बहन से, बहन का भाई से, सास का बहू से बहू का सास से। नौकर का मालिक के साथ - मालिक का नौकर के साथ क्या धर्म है। शिक्षक का शिष्यों के साथ और शिष्यों का शिक्षक के साथ क्या धर्म है। पुलिस का जनता के साथ, जनता का पुलिस के साथ क्या धर्म है अपने समाज के साथ क्या धर्म।

ब्राह्मण का धर्म है अज्ञान का नाश करना, क्षत्रिय का धर्म है अन्याय का नाश करना, वैश्य का धर्म है सेवा करना। अगर हम अपने धर्म को जान कर काम करेंगें तो हम अच्छे लोकान्तरों में जन्म लेकर सुख भीगेगें और अगर हम धर्म के विपरीत काम करेंगें तो अन्य जन्तुओं जैसे कुत्ते, गधे, नीच योनियों में डाल दिये जायेंगें। वहाँ अपने दायरे में खड़े रहेंगे। उसके आगे नहीं बढ़ पायेंगे।

धर्म और सम्प्रदाय अलग-अलग चीजें हैं। धर्म की बुनियाद प्रेम है, करुणा है, मैत्री है, अहिंसा है (धर्म मुक्त करता है। सम्प्रदाय बंधन में डालता है। धर्म दीवारें हटाया हैं सम्प्रदाय दीवारें खड़ा करता है। यही कारण है आज मुसलमान तो हैं लेकिन मोहम्मद साहब का भाई चारा कहाँ है। क्रिश्चियन तो हैं परन्तु ईसा मसीह का प्रेम कहाँ? जैन तो हैं परन्तु महावीर की अहिंसा और मैत्री कहाँ? बौद्ध तो हैं पर भगवान बुद्ध की करुणा कहाँ? सनातनी तो हैं पर भगवान राम की मर्यादा कहाँ? सम्प्रदाय के केवल लेबल लगे हैं जीवन में धर्म कहाँ है?

समय परिवर्तन के साथ-साथ अनेकानेक त्रुटियों ने आकर हमें घेर लिया और हम अपने धर्म से विचलित होते गये। परन्तु हमारा गौरवशाली इतिहास हमें स्मरण करवाता है-धर्मो रक्षति रक्षितः। जिसका अर्थ है धर्म की रक्षा करने वाला व्यक्ति धर्म द्वारा रक्षित होता है। यह श्लोक महाभारत के शांति पर्व से लिया गया है जिसके अनुसार जो व्यक्ति धर्म के मार्ग पर चलता है और धर्म की रक्षा करता है, वह स्वयं भी धर्म द्वारा संरक्षित रहता है। महाभारत में

इस विचार को भगवान कृष्ण द्वारा अर्जुन को गीता का उपदेश देते समय विस्तार से बताया गया है। यह धर्म की रक्षा के महत्त्व को उजागर करता है और सिखाता है कि धर्म के प्रति सच्ची निष्ठा रखने वाले व्यक्ति की रक्षा स्वयं धर्म द्वारा की जायेगी। वर्तमान भारत को एक बार फिर से विश्व गुरू बनाने के लिये हमें वैदिक धर्म का प्रचार प्रसार करना होगा इसके लिये हमें कुछ उपाय अपनाने होंगे जैसे- हमें धर्म में श्रद्धा और आस्था को कई गुना बढ़ाना होगा। सत्य को जानकर श्रद्धा पूर्वक धारण करना होगा। क्योंकि मनु महाराज कहते हैं- "यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मो वेद नेतर:" - जो तर्क की कसौटी पर खरा उतरे, बुद्धि जिसको स्वीकार करे और जो विज्ञान सम्मत हो उसे ही धर्म मानना चाहिये। न कि किसी के द्वारा कहे गये वचन -सत्य वचन महाशय - की मान कर चलना ऐसे ही है जैसे अन्धेनैन नीयमाना यथान्धा-अर्थात् एक अन्धे के पीछे अनेक अंधे चले और किसी गड्ढे में जा गिरें।

अपने धर्म का प्रचार प्रसार करने के लिए इसे ईश्वरीय कार्य समझकर जुट जाना चाहिए। कहा भी जाता है कि बोलने वाले के तूष (अनाज के छिलके) भी बिक जाते हैं और बिना प्रचार के अच्छी वस्तुओं को भी कोई नहीं पूछता। इस कार्य के लिए सुन्दर, स्वरूप और बुद्धिमान युवकों को लगाया जाना चाहिए। धर्म की विशेषता यह होनी चाहिए कि वह एक व्यक्ति के स्थान पर सबका हित करने वाला हो। वैदिक धर्म ऐसा ही है। वेदों में बहुत सारे मंत्र बहुवचनान्त है। जैसे-"धियो यो न: प्रचोदयात्"- हे परमात्मा हमारी बुद्धियों को उत्तम गुण कर्म स्वभाव से प्रेरित करिये। जहाँ एक बुद्धिमान और शेष मूर्ख हों वहाँ उसकी दशा 11 सौ नकटों में नाक वाला नक्कू' के जैसे होगी। जब पड़ौस में दुर्गन्ध हो तो हमारा घर कितना ही स्वच्छ रहे, वह हमें प्रभावित करेगी ही। इसीलिये सभी की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये। आर्य समाज का यह नियम हमें सावधान कर रहा है।

आज प्रचार तंत्र का युग है। इलैक्ट्रोनिक मीडिया ने सारे विश्व को एक परिवार जैसा बना दिया है। यदि इसका लाभ उठाते हुए वैदिक धर्म का प्रचार किया जाये तो विश्व के अधिकांश लोग लाभान्वित हो सकते हैं। अत: 'धर्मो रक्षति रक्षित:' को ध्यान में रखते हुए इसका खूब प्रचार प्रसार करें क्योंकि वैदिक धर्म सभी सुखों को देने वाला है। और सबको अनुशासित करने वाला ये धर्म दण्ड भी हमारे पास ही है।

LITTLE STEPS WONDER PLAY SCHOOL

Guiding Little Steps.....creating Big Dreams

Admission open for the 2026-2027 session

OUR PROGRAMME

WITH DAY CARE FACILITY

➠ PLAY GROUP ➠ PRE-NURSERY ➠ NURSERY

➠ KG ➠ TUITION ALSO AVAILABLE

D-190. Krishna Park, Devli Road, Khanpur, New Delhi-110080

Mobile : 9315628113, 7982405657

Panini Mahavidyalaya

Ram Lal Kapoor Trust

Knowledge liberates
सा विद्या या विमुक्तये

About Us

Ram Lal Kapoor Trust was set up in 1928 under the guidance of Pujya Guru ji - Pt. Brahmadtta ji Jigyasu to research ancient Vedic literature, its safe custody and its dissemination. To serve the society through Indian culture, education, science and medicine.

The objectives are achieved by

- Publication of Ved Vani - It has Articles covering Vedic Literature and Vedic philosophy apt for scholars.
- Panini Mahavidyalaya - Teaching Sanskrit Shastras according to the system introduced by Swami Dayand Saraswati.
- A Research wing - All research work of the Mahavidyalaya is published by Ramlal Kapoor Trust.

Our Work

- Research and publication of Vedic literature
- Publications
- Education
- The Library
- Printing Press

Aims and objectives of the trust

- Preserve and protect our ancient Vedic Texts.
- Research and Spread the Vedic Dharma.
- Research of ancient Vedic Literature, it's safe custody.
- To serve the Society through Indian Culture, Education, Science and Medicine.

Revali, Post- E. C. Murthal, Sonipat- 131039, Haryana, India
Phone: +91 7082111456 • Email: info@rlktrust.in or office@rlktrust.in

शुद्ध एवम् पवित्र वातावरण के लिए

स्थापित 1920

ओ३म् स्तुति

हवन सामग्री

ओ३म् स्तुति

हवन सामग्री भण्डार

हमारे यहाँ 100% वैदिक, ऋतु अनुकूल, हवन सामग्री, जड़ी बुटियाँ, यज्ञ पात्र, (पंच पात्र सुरवे, घी पात्र, आचमनी, लोटा, गिलास, कॉपर बोतल, हवन कुण्ड़, मेखला स्टैण्ड, इत्यादि) ओ३म् ध्वज, गायत्री पटका, झण्डियाँ, टोपी, थेला, पगड़ी, बिल्ले, की-चेन, मोमेंटो, फोटो फ्रेम, चित्र व स्टीकर आदि।

आर्य समाज की प्रचार सामग्री के थोक व रिटेल विक्रेता

ओ३म् स्तुति पूजा सामग्री (प्रा०) लिमिटेड

(Govt. Approved Exporter)

अपनी कालोनी (Opp. MCD School), गढ़ी, अलीपुर, दिल्ली-36

C-6/59, Keshav Puram, Delhi-110035

Mob.: 9350836171, 9958279666, 9958220342

E-mail: aryacommunication@hotmail.com

Website: www.hawansamagri.com

Vishal Rajasthan Emporium

LADIES **GENTS** **KIDSWEAR**

FAMILY SHOWROOM

16, Showroom At 1st Floor, Main Road,
Central Market, Lajpat Nagar-II,
New Delhi-110024
Mobile : 9811229265

E-mail : vishalrajasthanemporium@gmail.com
Website : www.vishalrajasthanemporium.com

न्यूरोथेरेपी द्वारा... दर्द से

बिरेन्द्र प्रसाद

तुरंत राहत सिर्फ 1 उपचार

कई लाभ

SWADESHI NEUROTHERAPY
Treatment & Training Centre

न्यूरोथेरेपी द्वारा पूरे शरीर का उपचार होता है यह शरीर में चल रही बीमारी व भविष्य में बीमारी आने की संभावना को खत्म करने में सक्षम है।

NO

PAIN
DRUG
SIDE EFFECTS
EXERCISE
INSTRUMENTS

Blood Circulation Control Based Pressure Therapy

Advanced drugless therapy

"LET YOUR BODY TREAT ITSELF"

अपने परिवार के संपूर्ण स्वास्थ्य के लिए अपनायें..

सर्वश्रेष्ठ दवा रहित चिकित्सा पद्धति..

आप भी बन सकते हैं न्यूरोथेरेपी Healer

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें

आर्य समाज कैलाश-ग्रेटर कैलाश-1, नई दिल्ली-48

9899352528 www.swadeshineurotherapy.com

H
M
HIRANYAM M.RAJSONS
JEWELLERS
M-57, GREATER KAILASH - 1

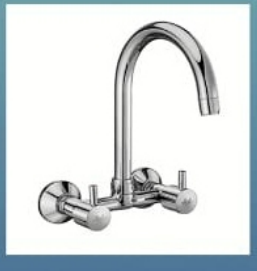

An ISO 9001:2015 Certified Co.
Barbie®
BATH FITTINGS
where
style and value
MEET
BATH FITTINGS - BATH ESSENTIALS- BATH ACCESSORIES - SS SINKS
E-mail : barbiefaucets@gmail.com, Website : www.barbiefaucet.com
Mobile : +91-98106 38910
Wholesalers TownWise & Distributors District wise Required Solicited

With Best Compliments

ANAND BOOK DEPOT

For all Kinds of School
& College Books,
Office Computer Stationery,
Printing Works,
Central School Books,
Competition Books,
and other
Office Requirements etc.

1410, Gurudwara Road,
Kotla Mubarakpur, New Delhi-110003
Ph.: 011-24699180, 41036500
Mob.: 9811035193

With Best Compliments From:

Anupama Sweets

Sweets
Namkeens
Snacks
Restaurant

Fresh Paneer Available

HS-13, Kailash Colony Market,
New Delhi-110048
Ph.: 41043311, 41433311
Mob.: 9871555365

Contact us for Veg Catering

Our Speciality Danedaar Burfi
Free Home Delivery
Special Rates for bulk Orders

MUNJAL SHOWA

हाई क्वालिटी शॉर्कस

TPM Certified

ISO / TS - 16949 - 2002 Certified

ISO - 14001 Certified

OHSAS - 18001 Certified

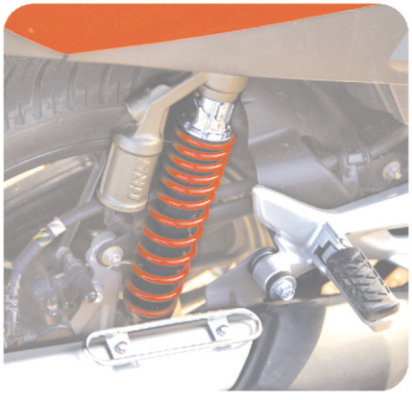

मुंजाल शोवा लिमिटेड भारत की प्रमुख शॉक एब्जॉर्बस बनाने वाली कंपनी है जिसकी रेंज फ्रन्ट फोर्कस, स्ट्रट्स (गैस चार्जड और कन्वेन्शनल) और गैस स्प्रिंगस की टू व्हीलर/फोर व्हीलर उद्योगों को उपलब्ध कराती है। कंपनी गुणवत्ता और सुरक्षा के उच्चतम मानकों के अनुरूप अपने सभी उत्पादों का निर्माण करती है। कंपनी के उत्पाद आरामदायक और सुरक्षित सवारी देते हैं और ये टिकाऊ और विश्वसनीय भी हैं। मुंजाल शोवा लिमिटेड, QS 9000, TS–16949, ISO 14001, OHSAS 18001 और TPM प्रमाणित कंपनी है। मुंजाल शोवा के तीन मैन्युफैक्चरिंग प्लाँट हैं – गुड़गाँव, मानेसर (हरियाणा) और हरिद्वार (उत्तराखण्ड)। मुंजाल शोवा लिमिटेड का शोवा कार्पोरेशन जापान के साथ तकनीकी और वित्तीय सहयोग करार है ।

हमारे उत्पाद

- ★ स्ट्रट्स/गैस स्ट्रट्स
- ★ शॉक एब्जॉर्बर्स
- ★ फ्रन्ट फोर्कस
- ★ गैस स्प्रिँगस/विन्डो बैलेन्सर्स

हमारे ख्यातिप्राप्त ग्राहक

Hero HONDA HONDA MARUTI SUZUKI YAMAHA

मुंजाल शोवा लिमिटेड

प्लॉट नं0 9–11, मारुति इडस्ट्रियल एरिया
गुड़गाँव –122015, हरियाणा
दूरभाष:
0124–2341001, 4783000, 4783100
ईमेल : msladmin@munjalshowa.net
वेबसाइट : www.munjalshowa.net

MUNJAL SHOWA

PRGI NO.: DLHIN/25/A3558

ARYA SAMAJ
KAILASH - GK-1

Brijmohan Munjal Vedic Kendra

Capacity
409
Seats

Ideally suited for :

Prayer Meetings, Academic / Panel discussions, Press Conference, Annual General Meetings, Conferences, Business Networking Events, Debates, Seminars, Training Programs, etc.

Facilities Include

- Podium with mike
- Six additional mikes with stand
- Retractable Screen & Projector
- State-of-the-art AV Systems & Intelligent Lights

Parking

Valet Parking for ~200 Cars

Location

B-31 C, Kailash Colony, New Delhi, PIN-110048

Contact Us 011-46678389 www.aryasamajgk1.in info@aryasamajgk1.in